श्री गणेश कवि विरचित

जातकालंकार

हिन्दी व्याख्या सहित

(JATAKALANKARA)

व्याख्याकार : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र

श्री शुक मुनि रचित "शुकसूत्र" का पूर्ण रसास्वादन
अनुभूत एवं अकाट्य योगों के लिए प्रसिद्ध ग्रन्थ

॥ श्री गणेशकविविरचितः ॥

जातकालंकारः

(नवाख्यया हिन्दीव्याख्यया विभूषितः)

व्याख्याकार:

डॉ. सुरेश चन्द्र मिश्रः

ज्योतिषाचार्य, एम.ए., पीएच. डी.
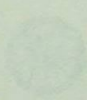
रंजन पब्लिकेशन्स

16, अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली-110002

॥ श्री गणेशकविविरचितः ॥

जातकालंकारः

(नवाख्यया हिन्दीव्याख्यया विभूषितः)

व्याख्याकारः

डॉ. सुरेश चन्द्र मिश्रः

ज्योतिषाचार्य, एम.ए., पीएच. डी.

16, अंसारी रोड़, दरियागंज

नई दिल्ली-110002

प्रस्ताविकम्

श्री गणेशकवि कृत **जातकालंकार** वास्तव में ही जातक शाखा का अलंकारभूत ग्रन्थ है। प्राचीन शुकसूत्रों का अर्थपल्लवन श्लोकबद्ध रीति से करके गणेश कवि ने सरस शैली में **जातकालंकार** की रचना की थी। ये काव्य, व्याकरण आदि के भी विद्वान् थे, ऐसा इन्होंने स्वयं उल्लेख किया है। **इसके योगों की बड़ी ख्याति है**। अनुभव में इसके अधिकांश योग खरे उतरते हैं। शकसंवत् १५३५ में इसकी रचना हुई थी। तभी से यह ग्रन्थ आबालवृद्ध सभी में समान रूप से लोकप्रिय है।

प्रस्तुत संस्करण में शुकसूत्रों का मूल पाठ रखकर सम्बन्धित श्लोक से उसका अर्थ संगमन करते हुए नवाख्या हिन्दी व्याख्या की गई है। जो अनेकत्र प्रचलित व्याख्यान भ्रमों को तोड़ती हुई एवं नूतन व प्रामाणिक अर्थ सम्पदा को प्रस्तुत करती हुई प्रतीत होगी। अतः हमारा विश्वास है कि यह अन्वर्थ संज्ञा टीका सिद्ध होगी।

मानव स्वभाववश यदि कहीं स्खलन हो गया हो तो विद्वज्जन क्षमा करेंगे। प्रस्तुत व्याख्या में पं० हरभानु शुक्ल की संस्कृत टीका से मुझे सहायता मिली है, अतः मैं खुले हृदय से उनकी अधमर्णता स्वीकार करता हूं। विद्यार्थियों को यह टीका विशेष रूप से आकर्षित करेगी तथा उनका कुछ उपकार कर सकेगी, तभी हम अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे।

विनयावनतः

सुरेश चन्द्र मिश्रः

विषय सूची

।। श्रीमर्मिव्यात् ।।

नमामि तां परां वाणीं धिषणाकल्मषापहाम्।
यस्या विवर्तरूपेण वाङ्मयं प्रतिभासते ।।१।।

तमोशानं महेशानं शश्वदानन्ददायिनम्।
विश्वरूपं विरूपाक्षं भवं भव्याय संश्रये ।।२।।

स जयति तिग्मदीधितिर्विश्वात्मा कालपालको हंसः।
निजखरतरकरस्पर्शाज् जाड्यं विद्राव्यते येन ।।३।।

सरसिजयुगमध्ये सस्मितो विद्यमानः
कुटिलकुमुदबन्धोरमृतैरार्द्रदेहः ।
दशदिक्कृतवसनो मोहयन् विश्वमेतज्
जयति निजविभाभिर्नीलकण्ठो महेशः ।।४।।

नमः पूर्वप्रणेतृभ्यो, मया बद्धोऽयमञ्जलिः।
येषां सुकृतिनां वाणी, न्यक्करोतितरां सुधाम् ।।५।।

श्रीमद्गणेशकविना विहिते निबन्धे,
गूढार्थज्ञापनपरामविगूढशब्दाम् ।
रम्यैर्वचोभिरिह मिश्रसुरेशनामा,
व्याख्यां धिया वितनुते विबुधप्रसादात् ।।६।।

नवाख्येत्यमलाव्याख्या जातकालंकृतौ मया।
शुकसूत्रार्थसम्पृक्ता क्रियते विदुषां मुदे ।।७।।

एक दृष्टि में

शुकसूत्र का मूल पाठ व श्लोक से समन्वय।
विविध भावों के विशिष्ट व अनुभूत योग।
सन्तान, रोग, नेत्र विकार एवं सफलता के अनुभूत योग।
योगाध्याय: अति महत्त्वपूर्ण ग्रह स्थितियां।
विविध फलित सिद्धान्तों का स्वानुभूत निष्कर्ष।
विष कन्या का खुलकर विचार।
पाराशरी के 'सम्बन्ध' का विशेष व पृथक् फल।
मकान एवं वाहन का सुख : यश व अपयश।
अनुभूत सोदाहरण आयु योग।
आयु योगों की परिसीमा।
नपुंसकता, कैंसर (असाध्य रोग) के योग।
हृदयरोग का अच्छा विचार।
निज कुण्डली से मातापितादि का फल विचार।
शरीराकृति: कद काठी का निर्णय।
शुकमुनि प्रोक्त **'शुकसूत्र'** पर आधारित।
क्वचिदन्यतोऽपि।
दैवज्ञों में प्रभूत लोकप्रिय, अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ।
अर्थ निर्धारण में नूतनता व प्रामाणिकता।

[१]

संज्ञाध्याय

मंगलाचरण :

सानन्दं प्रणिपत्य सिद्धिसदनं लम्बोदरं भारतीं
सूर्यादिग्रहमण्डलं निजगुरुं भक्त्या हृदब्जे स्थितम् ।
येषामंघ्रिसरोरुहस्मरणतो नानाविधाः सिद्धयः
सिद्धिं यान्ति लघु प्रयान्ति विलयं प्रत्यूहशैलव्रजाः ।।१।।

समस्त सिद्धियों के निवास स्थान स्वरूप श्रीगणेश, सरस्वती देवी, सूर्यादि ग्रह परिवार एवं हृदय में स्थित अपने गुरुवर को आनन्दानुभूति पूर्वक प्रणाम करके (मैं गणेश कवि) प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना कर रहा हूं। इन सबके चरण कमलों का स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य को सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं और विघ्नरूपी पर्वतसमुदाय शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है।

प्रसंगावतार :

सद्भावाकलितं पदार्थललितं योगाङ्गलीलार्चितं
श्रीमद्भागवतं शुकास्यगलितं यच्छ्रीधरस्वामिना ।
सुव्यक्तं क्रियते गणेशकविना गाथोक्ति तज्जातकं
वृत्तस्रग्धरया जनादिसुफलं ज्योतिर्विदां जीवनम् ।।२।।

गणेश कवि ने श्लेष के माध्यम से अपनी प्रकृत रचना और श्रीमद्-भागवत में समानता प्रकट की है।

जिस प्रकार महामुनि शुकदेव जी के मुख से प्रकट हुए श्रीमद्-भागवतामृत को स्वामी श्रीधराचार्य ने अपनी व्याख्या से सुबोध बनाया था, उसी प्रकार मैं गणेश कवि भी शुकसूत्र या जातक के सिद्धान्तों को सूत्र रूप में प्रकट करने वाले मुनिवर शुक के वचनों को स्रग्धरा छन्द के द्वारा पल्लवित कर सुव्यक्त करता हूं। प्रस्तुत जातकालंकार मनुष्यों के

सुफल को प्रकट करने वाला और दैवज्ञों की जीविका का आधार होकर दैवज्ञ जीवन रूप सिद्ध होगा।

भागवत व जातकालंकार में समानता :

सद्भावाकलितम्—सद्भावेन आकलितं विशिष्टम्।

श्रीमद्भागवत भक्ति रूपी सद्भाव से और जातकालंकार लग्नादि द्वादश भावों के सुन्दर भाव (फल) से विशिष्ट है।

पदार्थललितम्—पदार्थैः विष्णुभक्तिसाधनभूतैर्वा लौकिकसाधनैः धनादिभिः ललितं मनोहरमिति।

भागवत विष्णुभक्ति के साधनभूत श्रवण, मनन, कीर्तनादि से और जातकालंकार भावों के फल अर्थात् शरीर सुख, धन, वाहन, गृह, पुत्रादि पदार्थों से ललित है।

योगांगलीलार्चितम्—योगस्तावद् भक्तियोगस्तल्लीलाभिर्रचितं मण्डितं महितम् जातक शास्त्रीय ग्रहयोगानां तदंगानां भावानां च लीलाभिर्रचितमिति।

भागवत भक्ति योग के यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा व समाधि योगांगों की एवं जातकालंकार ग्रहयोगों व योगाश्रय भूत भावों की लीलाओं से महिमामण्डित है।

शुकास्यगलितम्—शुकास्यात् गलितं निर्गतं श्रीमद्भागवतं जातकालंकारो वा।

जनादिसुफलम्—जनादीनां मनुष्यप्रमुखानां प्राणिनां कृते सुफलं सत्फलप्रदमित्यर्थः।

श्रीमद्भागवत व जातकालंकार के श्रवण, कीर्तन व मननादि से सुफलप्रदत्व सुसिद्ध है।

ज्योतिर्विदां जीवनम्--ज्योतिः प्रकाशः (नारायणः) प्रणवरूपः, तद्विदां प्रणवविदां ब्रह्मविदां जीवनं जीवातुभूतं, पुनश्च ज्योतर्विदां दैवज्ञानां जीवनमिति।

भागवत ज्योतिरूप नारायण के जानकार भक्तों का अथवा जातकालंकार ज्योतिर्विदों दैवज्ञों का जीवनभूत है।

'श्रीधरस्वामिना' पद से श्रीमद्भागवत की सुप्रसिद्ध श्रीधरी टीका की ओर संकेत है।

ग्रन्थ निर्माण का प्रयोजन :

यत्पूर्वं परमं शुकास्यगलितं सज्जातकं फक्किका
रूपं गूढतमं तदेव विशदं कुर्वे गणेशोऽस्म्यहम्।
दैवज्ञः सुतरां यशःसुखमतिः श्रीहर्षदं स्रग्धरा-
वृत्तैश्चारु नृणां शुभायनपदं श्रीमच्छिवानुज्ञया ।।३।।

पूर्वोक्त श्लोक में श्रीधर स्वामी के साथ अपनी समानता प्रकट कर ग्रन्थकार के समक्ष समस्या उठ खड़ी हुई है। जिस प्रकार श्रीधर स्वामी ने श्रीमद्‌भागवत की व्याख्या की थी उसी प्रकार गणेश कवि को भी शुक जातक या शुकसूत्र की सीधी व्याख्या करनी चाहिए थी। लेकिन ग्रन्थकार ने यहां पृथक ग्रन्थ रचना का प्रारम्भ किया है, जो उक्त समानता में बाधक है। इसी विसंगति को समझकर ग्रन्थकार ने यह श्लोक लिखा है।

पूर्वकाल में श्री शुक मुनि के मुखारविन्द से निःसृत जातक सूत्र फक्किका अर्थात् सूत्र रूप में निर्मित हुआ था। इसी कारण वह गूढ़ार्थ-युक्त व संक्षिप्त होने के कारण मैं ग्रन्थकार गणेश दैवज्ञ उक्त जातक सूत्र का श्लोक रूप में विस्तार करता हूं। मैं (ग्रन्थकार) अपने गुरु 'शिव' की आज्ञा से यश व सुख की इच्छापूर्वक हर्षप्रद एवं शुभत्वयुक्त प्रकृत जातकालंकार की स्रग्धरा वृत्तों में रचना कर रहा हूं।

संस्कृत शब्द फक्किका का शाब्दिक अर्थ धीमीगति है। अतः लक्षण से गूढ़ार्थयुक्त वाक्य या वाक्यांश के लिए भी फक्किका शब्द का प्रयोग होता है। शब्द रत्नावली के मत से प्रेरणा या संक्षिप्त सूचना देने वाला वाक्य भी उक्त शब्द से बोध्य है। अतः 'फक्किकारूप' शब्द का अर्थ 'सूत्र' किया गया है। सूत्र या फक्किका का अर्थ **'गूढ़ अर्थ से युक्त संक्षिप्त वाक्यांश'** सुसिद्ध है।

भूयांसः सन्ति भूमौ निजमतिरचनाशालिनः काव्यगुम्फे
संख्यावन्तस्तथाऽपि प्रचुरपरगुणानन्दलीलां भजन्ते।
चंचद्गाम्भीर्यपद्माविबुधविटपिनां जन्मसंप्राप्तिभूतो,
मर्यादां न स्वकीयां त्यजति किल महान् रत्नधामा सरस्वान् ।।४।।

इस भूमिमण्डल पर बहुत से लोग अपनी बुद्धि के अनुसार काव्य रचना करते हैं, तथापि वे स्वयं कविताशक्ति से युक्त होने पर भी

किसी अन्य की रचना को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। अर्थात् दूसरे की ईषद् गुणशालिनी रचना को भी देखकर महान् व्यक्ति प्रसन्न ही होते हैं, ऐसा उनका स्वभाव या मर्यादा है।

जिस प्रकार साक्षात् लक्ष्मी, पारिजात वृक्ष व गम्भीरतादि गुणों का उत्पत्ति स्थान महासमुद्र कभी भी अपनी मर्यादा को नहीं लांघता, उसी प्रकार सत्पुरुष भी क्यों कर अपनी मर्यादा का उल्लंघन करेंगे? अर्थात् वे अवश्य ही इस जातकालंकार का स्वागत करेंगे।

आशय यह है कि जिस प्रकार बड़े अनमोल पारिजातादि पदार्थों को पैदा करने वाला समुद्र छोटी नदियों को भी आत्मसात् कर निराकुल रहता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ रचनाकार भी मेरी इस लघु रचना को अवश्य आत्मसात् कर लेंगे।

लग्न की महत्ता :

देहो द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मृति-
र्भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदिता लाभव्ययौ लग्नतः।
भावा द्वादश तत्र सौख्यशरणं देहं मतं देहिनां,
तस्मादेव शुभाशुभाख्यफलजः कार्यो बुधैर्निर्णयः॥५॥

लग्नादि बारह भावों को क्रमशः देह, धन, पराक्रम, सुख, पुत्र, शत्रु, स्त्री, मृत्यु, भाग्य, राज्य, लाभ एवं व्यय कहते हैं। भावों की ये संज्ञाएं यथा नाम तथा गुण हैं।

इनमें भी लग्न भाव विशेषतया सभी सुखों का आश्रय है। अतः विद्वान् दैवज्ञों को इसी लग्न के आधार पर मनुष्यों के शुभाशुभ का निर्णय करना चाहिए।

ग्रन्थाकार ने यहां जन्म लग्न की महत्ता को रेखांकित किया है। वास्तव में लग्न के बलाढ्य होने पर अन्य कई न्यूनताएं दब जाती हैं। मनुष्य के सभी शुभाशुभ फलों का आश्रय शरीर है। अर्थात् सभी फलों का भोग शरीर से ही होता है। यही कारण है कि इसे कर्माश्रय या फलाश्रय माना जाता है। इसकी बलवत्ता वास्तव में मनुष्य के भाग्य, सुख, धन व आयु आदि शुभ फलों के भोग को सीधे संकेतित करती है। जिस प्रकार उत्तमोत्तम दूध को यदि खराब, टूटे-फूटे बर्तन में रखेंगे तो निश्चय से वह नष्ट हो जाएगा, उसी प्रकार मनुष्य की कुण्डली के

श्रेष्ठ भाग्य धन योग भी लग्न की निर्बलता व दुष्टता के कारण अपना प्रभाव कम कर देंगे। अतः सर्वप्रथम लग्न का ही परीक्षण करना चाहिए। कहा गया है—

लग्नं जीवो मनश्चन्द्रः शरीरं तिथिभादिकाः।
जीवे पुष्टे फलं पुष्टं नष्टे नष्टं विदुर्बुधा ॥

(ज्योतिष सागर)

'अर्थात् लग्न जीव, चन्द्रमा मन, तिथि नक्षत्रादिक शरीर हैं। जीव के नष्ट होने पर फल का नाश व जीव के वली होने पर फल का पोषण होता है।'

भुवन दीपक में तो स्पष्ट कहा है कि चन्द्र यदि बीज है तो लग्न फूल है। नवांश फल एवं अन्य भाव स्वादु फल हैं।

भावों के विभिन्न नाम व कारकत्व

लग्नं मूर्तिस्तथाऽङ्गं तनुरुदयवपुः कल्पमाद्यं ततः स्वं,
कोशार्थाख्यं कुटुम्बं धनमथ सहजं भ्रातृदुश्चिक्यसंज्ञम्।
अम्बापातालतुर्यं हिबुकगृहसुहृद्वाहनं यानसंज्ञं,
वन्ध्वाख्यञ्चाम्वु नीरं जलमथ तनयं बुद्धिविद्यात्मजाख्यम् ॥६॥

लग्न के मूर्ति (शरीर), अंग, उदय, वपु, कल्प, आद्य आदि नाम हैं।

द्वितीय भाव के स्व, कोष, धन, कुटुम्ब आदि; तृतीय भाव के सहज, भ्रातृ, दुश्चिक्य आदि नाम हैं।

चतुर्थ भाव के माता, पाताल, तुर्य, हिबुक, सुहृद् (मित्र), वाहन, यान, वन्धु, जल (अम्वु, नीर) आदि नाम हैं।

पंचम स्थान के पुत्र, वुद्धि, विद्या, आत्मज आदि नाम हैं।

वाक्स्थानं पंचमं स्यात्तनुजमथ रिपुद्वेषिवैरिक्षताख्यं,
षष्ठं जामित्रमस्तं स्मरमदनमदद्यूनकामाभिधानम्।
रन्ध्रायुश्छिद्रयाम्यं निधनलयपदं चाष्टमं मृत्युरन्यद्,
गुर्वाख्यं धर्मसंज्ञं नवममिह शुभं स्यात्तपोमार्गसंज्ञम् ॥७॥

पंचम स्थान को वाक्स्थान भी कहते हैं। षष्ठ भाव के रिपु, द्वेषिन्, वैरी, घाव आदि नाम हैं।

सप्तम स्थान के जामित्र, अस्त, स्मर (काम), मद, मदन, द्यून, काम आदि नाम हैं।

अष्टम स्थान के रन्ध्र, आयु, छिद्र, याम्य, निधन, लय, (मृत्यु) आदि एवं नवम स्थान के गुरु, धर्म, शुभ, तप आदि नाम हैं।

तातात्राज्ञामानकर्मास्पदगगननभोव्योममेषूरणाख्यं,
मध्यं व्यापारमूचुर्दशममथभवं चागमं प्राप्तिमायम्।
इत्थं प्रान्त्यान्तिमाख्यं मुनय इह ततो द्वादशं रिष्फमाहु-
र्ग्राह्यं बुद्ध्या प्रवीणैर्यदधिकममुतः संज्ञया तस्य तच्च ।।८।।

दशम स्थान के पिता, आज्ञा, मान, कर्म, आस्पद, गगन, नभ, व्योम, मेषूरण, मध्य, व्यापार आदि नाम हैं।

एकादश स्थान के भव, आगम, प्राप्ति, आय आदि नाम हैं।

द्वादश स्थान के प्रान्त्य, अन्तिम, रिष्फ आदि नाम हैं।

इनके अतिरिक्त विद्वानों को स्वयमेव अपनी बुद्धि से पर्याय भी जान लेने चाहिएं।

आशय यह है कि चतुर्थ स्थान जल स्थान है। अतः जल के जितने भी पर्यायवाची होंगे वे सब चतुर्थ के नाम हो जाएंगे। इसी प्रकार अन्य भावों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

भावों की विशेष संज्ञा

आद्यं तुर्यं कलत्रं दशममिह बुधैः केन्द्रमुक्तं त्रिकोणं,
पुत्रं धर्माख्यमुक्तं पणफरमुदितं मृत्युलाभात्मजार्थम्।
धर्मं चापोक्लिमाख्यं व्ययरिपुसहजं कण्टकाख्यं हि केन्द्रम्,
चैतच्चातुष्टयं स्यात्त्रिकमिह गदितं वैरिरिःफान्तकाख्यम् ।।९।।

लग्न, चतुर्थ, सप्तम व दशम भावों की संयुक्त रूप से केन्द्र संज्ञा है।

नवम व पंचम की संयुक्त संज्ञा 'त्रिकोण' है।

अष्टम, एकादश, द्वितीय, पंचम भावों की 'पणफर' संज्ञा है।

तृतीय, षष्ठ, द्वादश व नवम की 'आपोक्लिम' संज्ञा है। केन्द्र स्थानों को कण्टक व चातुष्टय भी कहते हैं। इसी प्रकार षष्ठ, अष्टम व द्वादश को संयुक्त रूप से 'त्रिक स्थान' भी कहते हैं।

ग्रहों की स्वाभाविक मैत्री :

चन्द्रेज्यक्षितिजा रवीन्दुतनयौ गुर्विन्दुसूर्याः क्रमा-
च्छुक्रार्कौ रविचन्द्रभूमितनयाज्ञार्कोसितज्ञौमताः
अर्कादेः सुहृदः समा अथ बुधः सर्वे हि शुक्रार्कजौ,
भौमाचार्ययमा यमः कुजगुरू पूज्यः परे वैरिणः ॥१०॥

चन्द्र, गुरु, व मंगल सूर्य के मित्र हैं। चन्द्रमा के मित्र सूर्य व बुध। मंगल के गुरु, चन्द्र, सूर्य। बुध के शुक्र, सूर्य। गुरु के सूर्य, चन्द्र, मंगल। शुक्र के बुध, शनि। शनि के शुक्र, व बुध मित्र ग्रह हैं।

इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के क्रमशः बुध, सभी ग्रह (पूर्वोक्त से भिन्न) शुक्र-शनि, मंगल-शनि-गुरु, शनि, मंगल-गुरु व गुरु सम हैं। शेष ग्रह शत्रु होते हैं।

यहां ग्रहों की स्वाभाविक या निसर्ग मैत्री बताई गई है। सुविधा के लिए स्पष्टार्थ चक्र दिया जा रहा है—

ग्रह मैत्री चक्र

	मित्र	सम	शत्रु
सूर्य	चन्द्र, मंगल, गुरु	बुध	शुक्र, शनि
चन्द्र	सूर्य बुध	मंगल, गुरु, शुक्र, शनि	—
मंगल	सूर्य, चन्द्र, गुरु	शुक्र, शनि	बुध
बुध	सूर्य, शुक्र	मंगल, गुरु, शनि	चन्द्र
गुरु	सूर्य, चन्द्र, मंगल	शनि	बुध, शुक्र
शुक्र	बुध, शनि	मंगल, गुरु	सूर्य, चन्द्र
शनि	बुध, शुक्र	गुरु	सूर्य, चन्द्र, मंगल

यह मैत्री सत्याचार्य के मत पर आधारित है। सत्याचार्य ने कहा है—

सुहृदस्त्रिकोण भवनाद् ग्रहस्य सुतभे व्ययेऽथ धनभवने।
स्वजने निधने धर्मे स्वोच्चे च भवन्ति न शेषाः॥

(सत्याचार्य)

'अर्थात् ग्रह की मूल त्रिकोण राशि से २,१२,५,९,८,४ एवं उच्च राशीश मित्र हैं। शेष शत्रु होते हैं।'

जो ग्रह एक प्रकार से मित्र व शत्रु दोनों गुणों से युक्त हो तो वह सम माना जाएगा।

उदाहरण से समझिए। सूर्य की मूल त्रिकोण राशि सिंह है। अतः सिंह से द्वितीयेश बुध मित्र है, लेकिन वह एकादशेश भी है। अतः शत्रु हुआ। इसी कारण वह उभयरूप होने से सम है। द्वादशेश चन्द्रमा मित्र है। पंचमेश गुरु व अष्टमेश गुरु मित्र हैं। नवमेश मंगल मित्र है और चतुर्थेश होने से भी मित्र ही निश्चय हुआ। सूर्य का उच्चेश मंगल है तथा वह पहले ही मित्र सिद्ध हो चुका है।

इस प्रकार मित्र व सम का निर्णय हो जाने पर शेष ग्रह शत्रु होते हैं। इसी पद्धति से उक्त चक्र बनाया गया है।

ग्रहों की दृष्टि एवं राशीश

तृतीयदशमे ग्रहो नवमपञ्चमेष्टाम्बुनी,
क्रमाच्चरणवृद्धितः स्मरगृहं ततः पश्यति।
कुजः सितबुधौ शशी रविबुधौ सितक्ष्मासुतौ,
गुरुर्यमशनी गुरुर्भवनपा इमे मेषतः॥११॥

सभी ग्रह तृतीय व दशम को एकपाद (चौथाई) दृष्टि से, नवम पंचम को द्विपाद (आधी) दृष्टि से, चतुर्थ अष्टम को त्रिपाद (तीन चौथाई) दृष्टि से और सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

साथ ही शनि की एक पाद दृष्टि नहीं होती है। वह ३,१० भावों को भी पूर्ण दृष्टि से देखता है।

उसी प्रकार गुरु की द्विपाद दृष्टि नहीं होती, वह ५,९ स्थानों को भी पूर्ण दृष्टि से देखता है।

मंगल की त्रिपाद दृष्टि नहीं होती, वह ४,८ स्थानों को भी पूर्ण दृष्टि से ही देखता है। यह पाराशर मत है।

मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, गुरु, शनि, शनि व गुरु क्रमशः मेषादि राशियों के अधिपति होते हैं। अर्थात् ये राशियां इनके स्वक्षेत्र या स्वगृह कहलाती हैं।

हृद्यैः पद्यैर्गुम्फिते सूरितोषे-
ऽलंकाराख्येजातकेमंजुलेऽस्मिन् ।
संज्ञाध्यायः श्रीगणेशेन वर्यै-
र्वृत्तैर्दिग्भिःसंयुतोऽयंप्रणीतः ॥१२॥

इस प्रकार श्री गणेश कवि ने सुमनोहर दस छन्दों में सुन्दर व विद्वत् प्रिय जातकालंकार का संज्ञाध्याय लिखा।

मंगलाचरण व उपसंहार के दो श्लोकों को छोड़कर विषय से सम्बद्ध दस श्लोक हैं।

॥ इति पं० सुरेशमिश्रकृतायां नवाख्यायां जातकालंकारव्याख्यायां संज्ञाध्यायः ॥

[२]

अथ भावाध्यायः

शुकाननसरोरुहाद्गलितमत्र भूमीतले,
फलं परमसुन्दरं सकलमाकलय्याधुना।
ब्रवीमि तनुभावतः प्रवरदैववित्तोषदं,
यदत्र मम चापलं किमपि तत्क्षमध्वं बुधाः ॥१॥

इस धराधाम पर मुनिश्रेष्ठ शुक के मुखारविन्द से विनिर्गत परम-सुन्दर ज्योतिष शास्त्रीय फल को समझकर लग्नादि भावों का फल कहता हूं। यह फलादेश श्रेष्ठ दैवज्ञों के मन को संतुष्टि देनेवाला होगा। यदि यहां मुझसे कुछ स्खलन हो जाए तो विद्वान् कृपया क्षमा करेंगे।

लग्न भाव के अशुभ योग :

देहाधीशः स पापो व्ययरिपुमृतिगश्चेत्तदा देहसौख्यं,
न स्याज्जन्तोर्निजर्क्षे व्ययरिपुमृतिपस्तत्फलस्यैव कर्ता।
मूर्तौ चेत् क्रूरखेटस्तदनु तनुपतिः स्वीयवीर्येण हीनो,
नानातंकाकुलः स्याद्व्रजति हि मनुजो व्याधिमाधिप्रकोपम् ॥२॥

इस श्लोक में तीन योग बताए गए हैं—

यदि लग्नेश पापग्रह से युक्त होकर ६, ८, १२ भावों में कहीं हो तो मनुष्य को शरीर सुख नहीं होता है।

यदि ६, ८, १२ भावों में षष्ठेश, द्वादशेश व अष्टमेश में से किसी एक, दो या तीनों से युक्त होकर लग्नेश स्थित हो तो मनुष्य को शरीर सुख नहीं मिलता है।

यदि लग्न में क्रूर ग्रह हो, साथ में लग्नेश स्वबलहीन हो तो मनुष्य को अनेक मानसिक, शारीरिक कष्ट एवं रोगादि होते हैं।

पहले ही ग्रन्थकार बता चुके हैं कि शुक मुनि प्रोक्त जातक सूत्र के आधार पर मैं इस ग्रन्थ की रचना कर रहा हूं। शुक सूत्र की रचना व

उपलब्धि के विषय में चाहे जो वास्तविकता हो, लेकिन यह बिल्कुल स्पष्ट है कि गणेश कवि ने, संक्षिप्त शुकसूत्रों में बताए गए योगों को स्वयं परखा होगा तथा उनकी प्रामाणिकता देखकर ही वे जातकालंकार की रचना में प्रवृत्त हुए होंगे । पाठकों के लाभार्थ इस श्लोक से संबंधित सूत्र नीचे दिए जा रहे हैं । इसी परिपाटी से श्लोक सम्बद्ध सूत्रों को आगे भी यथा स्थान दिया जाएगा ।

(i) **देहाधिपः सपापः षष्ठाष्टम व्ययेषु तिष्ठति देह सौख्यं न जन्तोः ।**

(ii) **सषष्ठाष्टमपस्तत्र स्थितश्चेत्तदेव फलम् ।**

(iii) **लग्ने पापे जातस्तदधिपो बलहीनस्तदाधिव्याधिमान् । (शुकसूत्र)**

इन तीन सूत्रों के योगों को यथावत् गणेश कवि ने उक्त श्लोक में निबद्ध किया है। अर्थ में कोई भिन्नता नहीं है।

यहां हम यह वात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि ६, ८, १२ भावों के स्वामी इन्हीं भावों में कहीं स्थित हों तो सदैव शुभ फल देते हैं। विपरीत राजयोग भी इसी प्रकार बनता है। अर्थात् ६, ८, १२ में इनके स्वामी परस्पर स्थान परिवर्तन से स्थित हों तो **विपरीत राजयोग** होता है। यह एक अनुभूत राजयोग है। **उत्तरकालामृत** के ग्रहभावफल खण्ड श्लोक २२ में इसका वर्णन है।

लग्न के शुभ योगः

अङ्गाधीशः स्वगेहे बुधगुरुकविभिः संयुतः केन्द्रगो वा,
स्वीये तुङ्गे स्वमित्रे यदि शुभभवने वीक्षितः सत्त्वरूपः ।
स्यान्नूनं पुण्यशीलः सकलजनमतः सर्वसंपन्निधानं,
ज्ञानी मन्त्री च भूपः सुरुचिरनयनो मानवो मानवानाम् ।।३।।

यदि लग्नेश लग्न में हो या वह बुध, गुरु, शुक्र से युक्त होकर केन्द्र में हो, या लग्नेश अपने उच्च में हो या मित्र गृह या शुभ गृह में शुभ ग्रहों से दृष्ट हो।

इन योगों में से कोई एक भी योग हो तो मनुष्य को राजयोग होता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य सुन्दर शरीर वाला, पुण्यशाली, सकल जनों से समर्थित (लोकप्रिय) सब सम्पत्तियों का निवास स्थान, ज्ञानी, मन्त्री, राजा व सुन्दर नेत्रों वाला होता है।

इस श्लोक में तीन योग बताए गए हैं। लग्नेश लग्न में हो तो प्रथम श्रेणी योग व अपनी दूसरी राशि में हो तो द्वितीय श्रेणी योग माना जाएगा। लग्न को यदि लग्नेश, गुरु, बुध की युति या दृष्टि मिले तो वह बली होता है। अतः लग्नेश लग्न में बैठे और बुध, गुरु, शुक्र, से युत या दृष्ट भी हो तो और श्रेष्ठ फल होगा।

यदि लग्नेश केन्द्र में बुध, गुरु, शुक्र, से युत होकर बैठे तो भी उत्तम योग होता है।

अथवा लग्नेश अपने उच्च, मूल त्रिकोण, स्व गृह, मित्रराशि में स्थित हो और उसे शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) देखें तो भी उक्त योग बनता है। ये श्रेष्ठ व सर्वसम्मत योग हैं। आप अपने अनुभव में पाएंगे कि ऐसे योग होने पर मनुष्य सुखी, धनी, यशस्वी होता है। इस श्लोक से सम्बद्ध सूत्र उपलब्ध नहीं हैं।

इस योग में यह ध्यान रखना चाहिए कि अन्य ग्रहों की दृष्टि या योग इन योगकारक ग्रहों पर नहीं होना चाहिए। वराहमिहिर ने कहा है—

'होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षित युता नान्यैश्च वीर्योत्कटा।'

इस प्रकार विचारपूर्वक तारतम्य से फल कहना चाहिए। पण्डित जवाहरलाल नेहरू की कुण्डली में कर्क में चन्द्रमा लग्नस्थ है। अतः श्लोक में प्रोक्त प्रथम योग की महत्ता समझी जा सकती है। लेकिन इस श्लोक के योगों का श्रेष्ठ उदाहरण स्व० भूतपूर्व प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की कुण्डली है—
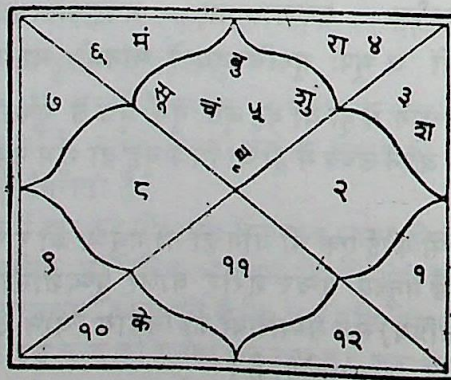
लग्न में लग्नेश सूर्य स्वक्षेत्री या मूलत्रिकोणी होकर बुध, गुरु व शुक्र से युक्त है। चन्द्र लग्न भी लग्नेश व बुध, गुरु, शुक्र से युक्त है। अतः श्लोकोक्त प्रकार से इनकी सुन्दरता, आकर्षक व्यक्तित्व, सुन्दर आंखें, जनमतशालिता, सम्पत्तिशालिता व राजत्व स्पष्ट है।

लेकिन इस कुण्डली में इतना ऊंचा फल मिलने का एक कारण यह भी है कि सूर्य, चन्द्र व लग्न इन तीनों पर समान रूप से उच्च योग घटित हो रहा है।

इससे कम मात्रा का योग कम फलप्रद होगा, यह समझना चाहिए।

एक अन्य शुकसूत्र भी है। यहां बताया गया है कि लग्नेश गुरु से युक्त हो तो मनुष्य अति राज-पूज्य होता है।

(i) **देहपो गुरुणा युतश्चेदतिराजपूज्यो भवति।** (शुकसूत्र)

लग्न के तीन अनिष्ट योग :

लग्ने क्रूरेऽथ याते खलखचरगृहं लग्ननाथे रवीन्दू,
क्रूरान्तःस्थानसंस्थावथ दिनपनिशानाथयोर्द्यूनयायी।
भूमीपुत्रस्तु पृष्ठादुदयमधिगतश्चन्द्रजश्चेन्मनस्वी
स्यादन्धो दुष्टकर्मा परभवनरतः पूरुषः क्षीणकायः ।।४।।

लग्न में क्रूरग्रह हो और लग्नेश (स्वराशि को छोड़कर) अन्य किसी क्रूरग्रह की राशि में हो।

सूर्य व चन्द्रमा पापग्रहों के मध्य में हों।

सूर्य लग्न या चन्द्र लग्न से सप्तम में मंगल हो और बुध पृष्ठोदय राशि (मेष, वृष, कर्क, धनु, मकर) में हो तो मनुष्य स्वेच्छाचारी, मन-मौजी, अन्धा, कुकृत्य या हीनकृत्य करने वाला, परोपजीवी व दुर्बल होता है।

यदि लग्नेश स्वयं पापग्रह हो और वह लग्नेतर स्थान में स्वराशि को छोड़कर किसी पापराशि में बैठा हो तभी प्रथम योग घटित होगा।

लग्न, लग्नेश, सूर्य व चन्द्र पर जितना पापप्रभाव होगा, उसी अनुपात से मनुष्य निर्धन व अकिंचन, असहाय, पीड़ित होता है, यह अनुभूत है।

सूर्य या चन्द्र से सप्तम में मंगल, मंगलीक योग बनाएगा जो उसके धनागम एवं शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुंचाएगा। इनसे द्विर्द्वादश स्थानों में पापग्रह दृष्टि की न्यूनता को देते हैं और सप्तम में मंगल बैठ कर उक्त द्विर्द्वाशिस्थ ग्रहों से षष्ठ व अष्टम सम्बन्ध भी रखेगा जो दृष्टि, भाग्य व सामाजिक प्रतिष्ठा को कम करेगा।

शीर्षोदय राशि में प्रश्न हो तो कार्य सिद्ध होते हैं और पृष्ठोदय राशि में कार्य हानि होती है, यह ज्योतिष का सिद्धान्त है। बुध जो चेतना, बुद्धि, वाणी एवं कलात्मकता का ग्रह है, वह पृष्ठोदय राशि में होगा तो उक्त पदार्थों की कमी रहेगी।

सूर्य व चन्द्र से द्विर्द्वादश में पाप ग्रह होने पर एक साथ पाप दुरुधरा ब पाप उभयचरी योग बनेगा, जो निश्चय से शुभ फल नहीं देंगे।

इस कुण्डली में ये योग देखे जा सकते हैं :
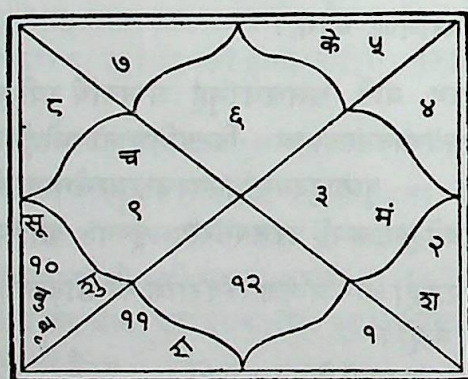
इस कुण्डली में लग्नेश पापराशि में है, अतः प्रथम योग अंशतः है। चन्द्रमा से सप्तम में मंगल है और बुध पृष्ठोदय राशि में है, अतः तृतीय योग पूर्ण रूप से घटित हो रहा है। ऊपर फल बताया गया है कि ऐसा व्यक्ति पराये घर में रहने वाला, कमजोर आदि होता है। इस व्यक्ति का घर कभी नहीं बसा। विवाह के बाद पांच महीनों में ही अलगाव हुआ। पृथक् पत्नी से पुत्र हुआ था जो 34 वर्ष बाद पिता से एक बार मिला और फिर अलगाव हो गया। अतः यह व्यक्ति कुटुम्ब सुख, मानसिक शान्ति व शरीर सुख से जीवन भर वंचित रहा। इन्हें लंगड़ापन भी जीवन भर रहा। इन सज्जन के पुत्र की कुण्डली में भी

लग्न में पाप राशि में केतु और लग्नेश सूर्य पाप राशि (वृश्चिक) में था। अतः यह भी जीवन भर मामा के घर में ही रहा था।

ऐसे योगों में व्यक्ति प्रायः पराश्रित, अस्थिर चित्त वाले, अशान्ति युक्त जीवन वाले और कुटुम्ब सुख से वंचित होते हैं।

धन भाव के चार योग :

कोशाधीशः स्वराशौ सुरगुरुसहितः सर्वसंपत्प्रदः स्यात्
केन्द्रे वाथ त्रिके चेद्भवति हि मनुजः क्लेशभाग् द्रव्यहीनः।
स्वान्त्याधीशौ त्रिकस्थौ कथितनुपयुतौ स्यात्तदा नेत्रहीन-
श्चन्द्रः पापेन युक्तो धनभवनगतः शुक्रयुङ्नेत्रहीनः ॥५॥

यदि द्वितीयेश गुरु से युक्त होकर अपनी राशि में स्थित हो तो मनुष्य सर्वसम्पत्तिवान् होता है। अथवा उक्त प्रकार से केन्द्र में स्थित हो तो भी मनुष्य सम्पत्तिशाली होता है।

यदि गुरु से युक्त धनेश ६, ८, १२ स्थानों में हो तो मनुष्य कष्टापन्न और धनहीन होता है।

यदि २, १२ भावों के अधिपति शुक्र व लग्नेश से युक्त होकर ६, ८, १२ में हों तो व्यक्ति नेत्रहीन होता है।

इसी प्रकार चन्द्रमा, शुक्र व पाप ग्रह से युक्त होकर द्वितीय भाव में हो तो भी मनुष्य नेत्रहीन होता है।

भाव, भावेश व भाव कारक की बलवत्ता व शुभता अवश्य ही सम्बन्धित भाव की वृद्धि करती है। यह बात सर्वत्र लागू होती है। अतः शुभ भावों के सम्बन्ध में क्रम से व अशुभ भावों के संदर्भ में विपरीत क्रम से इस नियम का फल जानना चाहिए।

अर्थात् लग्न, लग्नेश व लग्न कारक सूर्य यदि बली व शुभ होंगे तो श्री वृद्धि होगी जो कि सर्वजन सम्मत है।

लेकिन षष्ठ, षष्ठेश व षष्ठ का कारक शनि यदि इस प्रकार से बली व पापयुक्त हो तो रोग वृद्धि होगी जो कि अभीष्ट नहीं है।

द्वितीय कारक गुरु व द्वितीयेश की बलवत्ता व शुभता के आधार पर यह फल बताया गया है, जो युक्तियुक्त है।

पहले कह चुके हैं कि जिस भाव का स्वामी या जो भाव ६, ८, १२ भावों व भावेशों के सम्पर्क में आएगा, उसी भाव की हानि होगी, यह बात सामान्यत: सभी भावों पर लागू होती है। अत: धनेश व धन कारक दोनों ही यदि त्रिकस्थ हों तो मनुष्य दीन-हीन होगा।

द्वितीय व द्वादश स्थान नेत्र स्थान भी हैं। अत: इन दोनों भावेशों की नेत्रेश संज्ञा भी हुई। ये दोनों नेत्रेश यदि लग्नेश से युत होकर त्रिक में होंगे व साथ में अल्प ज्योति चन्द्र या काण ग्रह शुक्र होगा तो नेत्र ज्योति की हीनता के योग बनेंगे।

ये सारे योग व्यावहारिक प्रयोग में सफल व सटीक उतरते हैं। ऐसी स्थिति में हमने व्यक्तियों को सामान्य तारतम्य से उक्त फल पाते देखा है।

यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि धनेश केन्द्र में या त्रिकोण में स्वराशि के अतिरिक्त उच्च मूल त्रिकोण में भी होगा तो भी उक्त फल मिलेगा, यह सब अपनी बुद्धि से विचार लेना चाहिए।

हमारी **लघु पाराशरी विद्याधरी** के पृ० १४८ पर उद्धृत मोतीलाल नेहरू की कुण्डली में धनेश सूर्य उच्च में दशमस्थ है। साथ में शुक्र व बुध भी हैं। अत: सम्पत्तिवान् योग सिद्ध होता है।

वहीं पृ० ५० पर उद्धृत कुण्डली में देखिए। धनेश मंगल गुरु युक्त होकर उपचय एकादश स्थान में है। ये करोड़पति व सुखी व्यक्ति हैं। वहीं पर पृ० ३१ पर उद्धृत कुण्डली में धनेश, गुरु स्वयं है और केन्द्र में स्थित है। फलस्वरूप ये भी करोड़पति व्यक्ति थे। दुर्भाग्य से ४४वें वर्ष में इनका निधन हो गया है। उक्त वर्ष अष्टम भाव में पड़ता है। राहु, जो शनि के प्रभाव से युक्त है, उसकी दशा चल रही थी। सप्तमेश मारक शुक्र व द्वादशेश शुक्र की अन्तर्दशा में रोगोत्पत्ति हुई थी और उसी रोग से सूर्यान्तर में देहान्त हो गया था। इसका संकेत हम उन्हें पहले ही कर चुके थे।

अस्तु, अब नेत्रहीनता को लें। त्रिकों में शुक्र, चन्द्र, लग्नेश व नेत्रेश यदि एकत्र हों तो अन्धत्व होता है लेकिन इनमें से कुछ भी ग्रह यदि अलग-अलग त्रिकों में हों तो नेत्र ज्योति की क्षीणता भी होती है।

सूर्य शुक्र व लग्नेश की त्रिकस्थिति से भी तारतम्यानुसार अन्धता व ज्योति क्षीणता होती है। आगे के श्लोकों में यही बताया गया है।

हमारे **जैमिनीय सूत्र शान्तिप्रियभाष्य** के पृ० ९० पर उद्धृत कुण्डली देखें। वहां लग्नेश त्रिक द्वादश में व शुक्र अष्टम में है। लेकिन दोनों नेत्रेश केन्द्र में हैं। अतः ज्योति क्षीणता है।

इन योगों से सम्बन्धित 'शुक सूत्र' इस प्रकार हैं :

(i) **अथ द्वितीयस्य।**

(ii) **नेत्राधिपः सशुक्रदेहाधिपसम्बन्धी षडादिषु चेन्नेत्रे वैपरीत्यं भवति।**

(iii) **सचन्द्र शुक्रस्तत्र स्थितश्चेन्निशान्धत्वम्।**

(शुकसूत्र)

अन्य अन्ध योग :

शुक्रः सेन्दुस्त्रिकस्थो जनुषि निशि नरः प्राप्नुयादन्धकत्वं,
जन्मान्धः सार्कशुक्रस्तनुभवनपतिः स्यात्तदानीं मनुष्यः।
एवं तातानुजाम्बासुतनिजगृहिणीस्थाननाथाः स्थिताश्चे-
दादेश्यं तत्र तेषां प्रवरमतियुतैरन्धकत्वं तदानीम्॥६॥

जन्म समय में शुक्र व चन्द्रमा एक साथ ६, ८, १२ में एकत्र हों तो व्यक्ति रात्र्यन्धत्व (रतौंधी) वाला होता है।

यदि शुक्र व सूर्य से युक्त लग्नेश त्रिकों में एकत्र हों तो मनुष्य जन्मान्ध होता है।

इसी प्रकार यदि पिता, माता, भ्राता, पुत्र, पत्नी आदि स्थानों के स्वामी सूर्य व शुक्र से युक्त होकर ६, ८, १२ में हों तो क्रमशः तत्तत् सम्बन्धियों का अन्धत्व बताना चाहिए।

इन योगों से सम्बद्ध शुकसूत्र देखिए—

(i) **ससूर्यशुक्रदेहाधिपो नेत्राधिपः षडादिषु चेज्जात्यन्धः।**

(ii) **तत्र पितृस्थानाधिपश्चेत्तदा पितुरन्धकत्वम्।**

(iii) **एवं संज्ञाग्रहणात् मातृभ्रातृपुत्रकलत्रयाः तत्स्थाने स्थिताश्चेत्तेषामन्धकत्वं वाच्यम्।**

(शुकसूत्र)

सूत्र में ससूर्य शुक्र लग्नेश के साथ द्वितीयेश या द्वादशेश की स्थिति भी मानी गई है। लेकिन अकेला सूर्य ही शुक्रयुक्त होकर नेत्रविकार

करने में समर्थ है, यदि लग्नेश भी वहीं कहीं त्रिकों में हो, तब नेत्रेश भी साथ हो तो फिर अन्धत्व की मात्रा अवश्य ही बढ़ जाएगी।

तृतीय भाव

भ्रातृ सुख योग :

भ्रातृस्थानेशभौमौ व्ययरिपुनिधनस्थानगौ बन्धुहीनः
स्वक्षेत्रे सौम्यदृष्टे सहजभवनपे मानवः स्याच्च तद्वान्।
केन्द्रस्थे बन्धुसौख्यं शुभविहगयुते स्याददभ्रं नराणां
पापैश्चेदन्यथैतत्तदनु निजधिया ज्ञेयमित्थं समस्तम्।।७।।

यदि तृतीयेश मंगल के साथ ६, ८, १२ स्थानों में स्थित हो तो मनुष्य भाइयों से हीन होता है।

यदि तृतीयेश निज राशि में स्थित हो और उसे शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) देखें तो मनुष्य के भाई होते हैं।

यदि तृतीयेश केन्द्र में शुभ ग्रह से युक्त हो तो भाइयों का सुख खूब होता है।

यदि तृतीयेश केन्द्र में पाप ग्रहों से युक्त हो तो भाइयों का सुख नहीं होता है।

इस प्रकार अपनी बुद्धि से कल्पना पूर्वक फलादेश की विशेषताएं भी बतानी चाहिएं।

सामान्य नियम है कि जिस भाव का स्वामी ६, ८, १२ में हो, पाप-युक्त या दृष्ट हो, नीचगत, शत्रु क्षेत्री हो तो क्रमशः उस भाव का फल मामूली ही होगा। यही सिद्धान्त यहां स्वीकार किया गया है। यदि तृतीयेश ग्रह और मंगल ६, ८, १२ में होंगे तो एक साथ ही तृतीयेश व भ्रातृकारक मंगल की हीन भाव स्थिति भ्रातृ सुख से वंचित कर देती है। ऐसी स्थिति में भाई नहीं होते हैं।

यदि भ्रातृ स्थानेश केन्द्र में हो या त्रिकोण में हो और शुभ ग्रहों की युति या दृष्टि भी हो तो भाई होते हैं और मनुष्य को उनका सहयोग, स्नेह आदि मिलता है।

इससे विपरीत यदि भ्रातृ स्थानेश केन्द्रादि शुभ भावों में पापयुत दृष्ट हों तो भाई तो हो सकते हैं, लेकिन उनसे सुख, स्नेहादि नहीं मिलता है !

इसी प्रकार तृतीयेश नीचादिगत भी हो तो भी सामान्य तारतम्य से उक्त फल कहना चाहिए। इसी तरह अधिक दोष होना अर्थात् नीचगत, त्रिकगत व पापदृग्या।ग साथ ही हो तो बहुत पापफल अन्यथा तारतम्य से शुभ या अशुभ फल कहना चाहिए।

यदि तृतीयेश २,१२ स्थानों में शुभयुतदृष्ट हो तो सामान्य अर्थात् उदासीन फल और वही पापयुतदृष्ट हो तो अति उदासीन अर्थात् अशुभ फल (भ्रातृ सुख हीनता) होता है।

ये सामान्य नियम हैं। प्रत्येक नियम का अपवाद भी सम्भव है। अत: किसी एक योग को देखकर ही निर्णय पर नहीं पहुंचना चाहिए। पं० नेहरू की कुण्डली हमारा लघुपाराशरी विद्याधरी, पृ० ५५ पर उद्धृत है। वहां मंगल तृतीय में है, जो **'कारको भावनाशाय'** के अनुसार भावफल की कमी प्रकट करता है। लेकिन तृतीयेश बुध शुभ ग्रह शुक्र से युक्त होकर केन्द्र में है। अब यह बात तो सर्वत्र स्पष्ट है कि वे अकेली सन्तान थे, उन्हें भाई का सुख नहीं मिला था।

आइए, विचार कर देखें। तृतीय भाव, तृतीयेश व मंगल (कारक) भाई को प्रतिनिधित्व देते हैं।

तृतीय में पापग्रह मंगल है, अत: प्रभाव ऋणात्मक है। कारक तृतीय में बैठकर भावहानि करता है। तृतीयेश साथ ही द्वादशेश भी है जो भावहानिप्रद है। मंगल से तृतीय में भी पापग्रह है। अत: उक्त श्लोक के योग के साथ थोड़ी बुद्धि भी प्रयुक्त करें तो स्पष्टतया भ्रातृ सुख हीनता प्रकट हो जाती है। सम्बन्धित शुक सूत्र इस प्रकार हैं।

(i) **अथ तृतीयस्य।**

(ii) **भ्रातृस्थानाधिपभौमौ षडादिषु स्थितौ चेत्तदा भ्रातृहीनता।**

चतुर्थ भाव विचार

यशः प्राप्ति व वाहन सुख योग :

पातालेशः स्वराशौ शुभखचरयुतो भाग्यनाथेन युक्तः,
सामन्तः स्यात्ततश्चेत्सुरपतिगुरुणा वाहनेशस्तनुस्थः।
संदृष्टो राजपूज्यस्तदनु च हिबुकाधीश्वरो लाभसंस्थो,
यानं पश्यन्नराणां निवहमभिमतं वाहनानां प्रदत्ते ॥८॥

चतुर्थेश यदि अपनी राशि में शुभ ग्रह से युक्त होकर साथ ही नवमेश से भी युक्त हो तो मनुष्य मण्डलेश्वर, जिलाधीश, सामन्त अर्थात् प्रधान, पार्षद, प्रमुख आदि होता है।

यदि चतुर्थेश लग्न में स्थित हो और उसे बृहस्पति पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो मनुष्य राज्य पूज्य अर्थात् राज सम्मानित, प्रसिद्ध व लोकप्रिय होता है।

इसी प्रकार चतुर्थेश यदि ग्यारहवें भाव में हो और गुरु से दृष्ट हो तो भी मनुष्य को अपने अभीष्ट वाहनों की प्राप्ति होती है। अथवा चतुर्थेश चतुर्थ को देखे और उसे (चतुर्थेश को) गुरु देखे तो भी मनुष्य को वाहनों का सुख मिलता है।

चतुर्थ सुख स्थान व नवम भाग्य स्थान है। मनुष्य को सुख भाग्य से ही मिलता है। अतः नवमेश व चतुर्थेश का योग व उन पर शुभ प्रभाव भाग्य योग की सृष्टि करेगा।

एकादश स्थान प्राप्ति स्थान है। अतः चतुर्थेश यदि एकादश में गुरु (धन भाग्य कारक) से युक्त या दृष्ट होकर बैठेगा तो भाग्य योग बनेगा व वाहनों का सुख मिलेगा। लेकिन चतुर्थेश एकादश में बैठकर चतुर्थ को नहीं देख सकता है अतः दूसरा योग बताया गया है कि चतुर्थेश गुरु दृष्ट होकर कहीं भी बैठकर चतुर्थ को देखे तो वाहन सुख मिलता है।

इनके अतिरिक्त भी वाहन योग होते हैं। जिस कुण्डली में उक्त योग न हो तो तुरन्त वाहनहीनता नहीं कहनी चाहिए। तब सामान्य नियमों से विचार करना चाहिए। उक्त योगों में हमारे विचार से 'युत'

शब्द से दृष्ट का और 'दृष्ट' से युत का भी ग्रहण है। अर्थात् युत कहें या दृष्ट, अर्थ दोनों ही ग्राह्य हैं।

उक्त सभी योगों में शुक-सूत्र में भाग्य व वाहन की सम्मिलित प्राप्ति बताई गई है। इस श्लोक से सम्बद्ध सूत्र इस प्रकार हैं :

(i) **अथ चतुर्थस्य।**

(ii) **वाहनाधिपः गुरुशुक्रसहितः स्वराशौ वा चेत्तदानेकवाहनाधिपतिः मण्डलाधिपतिर्भवति।**

(iii) **चतुर्थपो भाग्याधिपेन शुभग्रहैर्युक्तश्चेत्तदा वाहनाधिपतिर्भवति।**

(iv) **वाहनपो भाग्याधिपश्च गुरुणा संदृष्टो देहसम्बन्धी चेद्राजपूज्यो भवति।**

(v) **वाहनभाग्याधिपौ लाभस्थितौ वाहनस्थानं पश्यन्तौ वा तदा सकल भाग्यवान् भवति।** (शुकसूत्र)

इन स्थितियों में भाग्यवाहन योग बनते हैं—

(i) चतुर्थेश गुरु शुक्र से युक्त (दृष्ट) हो, चतुर्थेश स्वक्षेत्री हो।

(ii) चतुर्थ नवमेश शुभ युक्त (दृष्ट) होकर कहीं हो।

(iii) चतुर्थ नवमेश गुरु दृष्ट होकर लग्न में हों। या लग्न को देखें।

(iv) चतुर्थ नवमेश एकादश में हों या चतुर्थ नवमेश चतुर्थ को देखें।

उक्त सूत्रों की कुछ बातें गणेश कवि ने श्लोक में नहीं बताई हैं। हमारे विचार से श्लोक की अपेक्षा सूत्र की बातें अधिक उपादेय हैं। प्रमाण स्वरूप निम्नोक्त कुण्डली देखें।
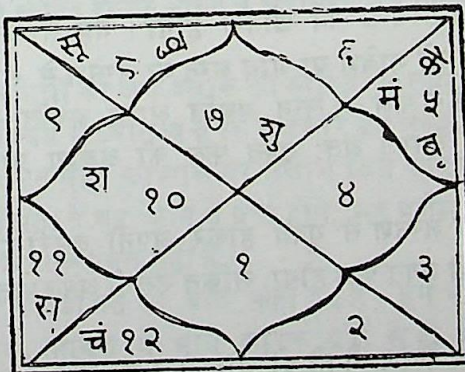
चतुर्थेश शनि स्वराशि में [देखें सूत्र (i)] है। इनके पास वर्तमान में ६ कारें हैं और मेरी जानकारी में कम से कम ५० वार विभिन्न देशों की यात्रा कर चुके हैं।

इन योगों में वाहन व भाग्य दोनों वस्तुओं की प्राप्ति यथावसर बतलानी चाहिए। जहां वाहन की सम्भावना न हो वहां राज-सम्मान मिलता है।

गृह प्राप्ति के योग :

स्वक्षेत्रे तुर्यनाथस्तनुपतिसहितः स्यादकस्माद्गृहाप्तिः,
सौहार्दं वा सुहृद्भिस्तदितरगृहगश्चेद्गृहाऽलाभयोगः।
यावन्तः पापखेटा धनदशमगृहप्रान्त्यपैश्चेत् त्रिकस्था,
युक्तास्तावत्प्रमाणा ज्वलनवशगताः क्लेशदा स्युर्गृहानुः ॥६॥

यदि लग्नेश से युक्त होकर चतुर्थेश स्वक्षेत्र में हो तो अकस्मात् गृह लाभ होता है और मित्रों से उत्तम प्रीति होती है।

यदि लग्नेश से युक्त चतुर्थेश स्वक्षेत्र में न हो अर्थात् अनिष्ट स्थानों में या शत्रु नीचादि क्षेत्रों में हो तो गृह लाभ नहीं होता है।

२, ४, १०, १२ स्थान के स्वामियों में से कुछ से या सवसे युक्त होकर जितने पापग्रह ६, ८, १२ स्थानों में हों, उतने घर उस व्यक्ति के अग्नि से नष्ट हो जाते हैं, या कष्टप्रद होते हैं।

यदि लग्नेश व चतुर्थेश चतुर्थ में हों तो श्रेष्ठ फलप्रद होंगे। तब चतुर्थ स्थान सम्वन्धी फल अच्छा मिलेगा। लग्न से योग या लग्नेश से सम्बन्ध आत्म से सम्बन्ध का द्योतक होगा। यह सामान्य सिद्धान्त निःसृत हुआ कि जो भावेश या भाव लग्न या लग्नेश से सम्बन्ध करता होगा, उसी भाव के फल को लग्न अर्थात् आत्म अर्थात् निज अर्थात् जातक से जोड़ देगा। अतः उक्त फल की अवश्य प्राप्ति वतानी चाहिए।

यदि चतुर्थेश लग्नेश से युक्त होकर अपनी दूसरी राशि या शुभ भाव में हो तो भी उक्त फल होगा, लेकिन उतनी अकस्मात् गृह प्राप्ति न होगी।

यहां श्लोक में केवल ये ही दो योग गृह-लाभप्रद वताए गए हैं।

इसका आशय यह नहीं समझना चाहिए कि अन्य योगों में गृह लाभ नहीं होगा। भाव, भावेश व कारक के पूर्वोक्त नियम व शुभदृग्योग से निर्णय करना चाहिए।

पिछली कुण्डली में ही यदि देखें तो चतुर्थेश चतुर्थ में है। अन्य दृग्योग सिद्ध नहीं होता है। तब भी इनके पास अच्छी अचल सम्पत्ति है।

अब अगले योग को देखिए। २, ४, १०, १२ स्थानों के स्वामियों से युक्त पाप ग्रह पाप स्थानों (६, ८, १२) में हों तो घर का दुख बतलाना चाहिए। अर्थात् घर या भवन कष्टप्रद सिद्ध होता है। आजकल आवासीय भवन में आग से बड़ी क्षति होना कोई आम बात नहीं है, अतः केवल कष्टप्रदत्व ही बताना चाहिए।

द्वितीय धन सम्पत्ति व कुटुम्ब का, चतुर्थ स्वयं गृह सम्पत्ति का, द्वादश सर्वविध हानि का और दशम श्रेष्ठतम केन्द्र है। अतः इनके स्वामी त्रिकस्थ हों तो निश्चय से हानिप्रद होंगे। यदि साथ में पापयोग भी हो तो करेला और नीम चढ़ा वाली उक्ति चरितार्थ होगी ही। फिर भी उक्त भावेशों में से जितने अधिक भावेश उक्त प्रकार से स्थित होंगे, उतना ही पाप फल भी बढ़ेगा। इस श्लोक से सम्बन्धित शुक सूत्र प्रस्तुत हैं—

(i) **गृहाधिपेन युक्ते देहाधिपेऽनायासेन गृहागमः।**

(ii) **गृहाधिपो विपरीतस्थानस्थितश्चेद् गृहालभ्ययोगः।**

(iii) **गृहवित्तकर्मव्ययपाः सपापाः षडादिषु त्रिषु स्थिताश्चेदुक्तग्रहसंख्यका गृहा न भविष्यन्तीति वाच्यम्।**

(iv) **अनेन स्थानेन दशमेन भौमेन च क्षेत्रचिन्ता सुख चिन्ता च।**

(शुकसूत्र)

प्रथम तीन सूत्रों का अर्थ श्लोक की व्याख्या में स्पष्ट हो चुका है। तीसरे सूत्र के विषय में ध्यातव्य है कि सूत्रकार ग्रह संख्या तुल्य गृहों का नाश कहते हैं। उन गृहों का नाश या अलाभ किस कारण से होगा, यह स्पष्ट नहीं है। अतः वे घर आग से नष्ट होंगे, यह गणेश कवि की निज कल्पना ही है, जो तर्कसंगत नहीं है।

चौथे सूत्र में बड़ी पते की बात कही गई है। हम भी पहले ही कह चुके हैं कि भाव, भावेश व भाव कारक ग्रहों से हो किसी भाव का

विचार करना चाहिए। सूत्र में इसी बात को प्रमाणित किया गया है।

चतुर्थ, दशम व मंगल से घर व सुख की परीक्षा करनी चाहिए। इन तीनों तत्त्वों में यदि बुध व चन्द्र को जोड़कर देखा जाए तो चमत्कारिक फल कहा जा सकता है।

अतः स्पष्ट हुआ कि जिस कुण्डली में श्लोकोक्त योग न होने पर भी चतुर्थ, चतुर्थेश, दशम, दशमेश, मंगल व बुध चन्द्र में से कुछ भी शुभ युक्त, बली युक्त, स्वामिदृष्ट या अन्य प्रकार से भाव बली होंगे तो निश्चय से चतुर्थ भाव का फल मिलेगा।

वाहन नाश योग :

यावन्तो वाहनस्थाः शुभविहगदृशां गोचरा नो भवेयु-
स्तावन्तो वा विरामाः परमगुणवतां वाहनानां नृणां स्युः।
क्रूराः पश्यन्ति यानं व्ययनिधनगताश्चेत्तदा तद्वदेव
प्राज्ञैरादेश्यमेषां खलु शुभकरणं शान्तिकं वाहनानाम् ॥१०॥

चतुर्थ स्थान में जितने पापग्रह, शुभ ग्रहों की दृष्टि से रहित हों, उतने ही अच्छे वाहन नष्ट हो जाते हैं। अथवा अष्टम व द्वादश स्थान में स्थित जितने पाप ग्रह चतुर्थ स्थान पर दृष्टि रखें, उतनी ही संख्या वाले वाहनों का विनाश होता है।

इसीलिए उक्त योगों में वाहनों के लिए शुभकारक शान्ति विधान करवाना चाहिए !

इस श्लोक से सम्बन्धित शुक-सूत्र उपलभ्यमाण नहीं हैं। लेकिन जातकालंकारकर्ता गणेश कवि का उक्त कथन अनुभव सिद्ध है। चतुर्थ में पापग्रह अवश्य ही वाहन नाश कराते हैं। लेकिन संख्या के सम्बन्ध में हम सहमत नहीं हैं। कारण यह है कि कभी-कभी एक पाप ग्रह ही बार-बार वाहन नाश कराता है और कभी कई पाप ग्रह भी स्थिति भेद से एकाध बार ही उक्त फल देते हैं।

उदाहरणार्थ श्लोक ८ की व्याख्या में उद्धृत कुण्डली में चतुर्थ में शनि अकेला है और शुभ दृष्टि से रहित है तथापि दो बार इनकी लगभग नई फिएट गाड़ी चोरी हुई और कभी वापस नहीं मिली। वास्तव में पूर्ण दृष्टि ही फलप्रद है, शेष एक पादादि दृष्टि योगघटक नहीं होती है।

अब अष्टम व द्वादश में स्थित पापग्रहों की बात को लें। चतुर्थ, अष्टम व द्वादश भाव परस्पर त्रिकोण भाव हैं। पाप ग्रह मंगल, शनि, राहु, सूर्य हैं। इनमें से किसी की भी दृष्टि त्रिकोणों में नहीं पड़ती है। अत: उक्त योग अयुक्तियुक्त है। यह योग सम्भव नहीं है।

इसका समाधान केवल यह हो सकता है कि ८, १२ भावों में स्थित पापग्रह भी वाहन नाशक होते हैं, केवल इतना योग माना जाए। जिस भाव से केन्द्र त्रिकोणों में पापग्रह होंगे, उस भाव का फलनाश प्रसिद्ध ही है। अत: चतुर्थ से दोनों त्रिकोणों में पाप ग्रह, चतुर्थ नाशक सिद्ध होंगे।

पंचम भाव विचार

विद्या बुद्धि विचार:

विद्यास्थानाधिपो वा बुधगुरुसहितश्चेत् त्रिके वर्तमानो,
विद्याहीनो नर: स्यादथ नवमनिजक्षेत्रकेन्द्रेषु तद्वान्।
बालत्वं वृद्धता वा यदि गगनसदां जन्मकाले तदा स्या-
त्प्रज्ञामान्द्यं नराणामथ यदि विहग: स्वर्क्षगो दोषहृत् स्यात् ।।११।।

यदि पंचमेश ६, ८, १२ भावों में हो और बुध, गुरु भी उक्त स्थानों में ही कहीं स्थित हों तो मनुष्य विद्याहीन होता है। अकेला पंचमेश भी उक्त फल ही देने वाला होगा।

इसके विपरीत पंचमेश यदि पंचम, नवम या केन्द्रों में कहीं हो तो जातक विद्वान् होता है। यदि इस पंचमेश के साथ बुध गुरु भी हों तो विद्वत्ता में कोई सन्देह नहीं रहता है।

यदि जन्म समय में पंचमेश या विद्याकारक ग्रह बाल्य या वृद्धावस्था में हों तो जातक मन्दबुद्धि होता है। लेकिन बाल्य-वृद्धावस्थागत ग्रह स्वराशि में हों तो उक्त दोष का नाश हो जाता है।

यहां यह तारतम्य अवश्य मस्तिष्क में रखना चाहिए कि पंचमेश, बुध व बृहस्पति ये तीनों पदार्थ, विद्या व बुद्धि के कर्ता हैं। यदि इनमें

से कोई एक त्रिक में हो और शेष दोनों केन्द्र त्रिकोण में या अन्यथा बली हों तो विद्यावान् होगा।

इसी प्रकार चन्द्र लग्न व गुरु से भी पंचमेश व पंचम भाव को देखना चाहिए।

अतः अकेला पंचमेश भी त्रिक में बैठकर तब तक विद्याहीनता नहीं कर सकेगा, जब तक कि अन्य विद्याकारक तत्त्व भी हीन नहीं होंगे। उदाहरणार्थ हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** के पृ० १०८ पर उद्धृत पं० मुकुन्द दैवज्ञ की कुण्डली देखिए। वृश्चिक लग्न में पंचमेश गुरु द्वादश में सूर्य के साथ है। अतः पंचमेश त्रिकगत हुआ। केवल बुध लग्न में है। पंचम पर शुक्र की दृष्टि है। चन्द्र से पंचम में स्वयं बुध है, केन्द्र में बृहस्पति है। गुरु से पंचमेश शनि गुरु से दशम स्थान में है। अतः जातकालंकार के मत से विद्याहीन योग होते हुए भी इन्होंने ४० के लगभग मौलिक ग्रन्थ लिखे और अभिनव वराह मिहिर की उपाधि से अलंकृत किए गए थे। पंचमेश की केन्द्र त्रिकोण स्थिति व गुरु, बुध, शुक्र की बलवत्ता जातक को निश्चय से विद्यावान् व तीव्र बुद्धि वाला बनाती है, यह अनुभूत है। यह बात आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रवीन्द्रनाथ टैगोर, वल्लभाचार्य, रामकृष्ण परमहंस एवं लोकमान्य तिलक आदि अनेक प्रसिद्ध विद्या-विनय-प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों की कुण्डली में सर्वथा स्पष्ट हो जाती है। इस श्लोक से सम्बन्धित शुक-सूत्र इस प्रकार हैं—

(i) **विद्यास्थानाधिपः सबुधजीवः षडादिषु स्थितश्चेद्विद्याहीनो भवति।**
(ii) **पंचमेन बुधेन बुद्धिचिन्ता।**
(iii) **केन्द्रत्रिकोणे वा स्वस्थाने स्थितश्चेद्विद्यायुक्तो भवति।**
(iv) **किन्तु क्षणस्थायी।**
(v) **तत्र बाल ग्रहत्वे बालभावे प्राज्ञता बुद्धत्वे मूर्खता चेति ज्ञेयम्।**
(vi) **एवं धनस्यापि धनाधिपगुरूभ्यां धनसम्पत्तिर्वाच्या।**
(vii) **पूर्ववत्।**

(शुकसूत्र)

सूत्र ५ तक की बातों का संग्रह श्लोक में हो गया है। लेकिन सूत्र ६-७ में बताया गया है कि धनेश, बुध, गुरु ये तीनों ६, ८, १२ भावों में हों तो मनुष्य धनहीन होगा।

यदि ये केन्द्र, त्रिकोण या स्वराशि में होंगे तो धन होगा। यदि वहां धनस्थान में बालावस्था में ग्रह हों तो बचपन में और वृद्धावस्था में हों तो वृद्धता में या युवावस्था में हों तो युवक होकर धन मिलता है।

सन्तानहीनता व गूंगापन :

वाक्स्थानेशो गुरुर्वा व्ययरिपुविलयस्थानगो वाग्विहीन-
श्चैवंपित्रादिकानां पतय इह युता मूकता स्याच्च ताभ्याम्।
वागीशात्पञ्चमेशस्त्रिकभवनगतः पुत्रधर्माङ्गनाथा
रन्ध्रे द्वेष्यान्तिमस्था यदि जनुषि नृणामात्मजानामभावः ।।१२।।

यदि द्वितीय स्थान का स्वामी ग्रह और गुरु इनमें कोई एक या दोनों ६, ८, १२ स्थानों में गए हों तो मनुष्य वाणीहीन अर्थात् मूक होता है।

इसी प्रकार जातक की कुण्डली में माता, पिता, भ्राता आदि स्थानों के स्वामी यदि उनसे द्वितीयेश व गुरु से युक्त होकर त्रिक स्थानों (६, ८, १२) में गए हों तो उन सम्बन्धियों की मूकता कहनी चाहिए।

यदि बृहस्पति से पंचम स्थान का स्वामी एवं १, ५, ९ भावेश त्रिक स्थानों में गए हों तो मनुष्य को सन्तानहीन योग होता है।

बृहस्पति पुत्रकारक एवं वाणीप्रद ग्रह है। यदि इसकी निर्बलता होगी तो उक्त दोनों फलों में न्यूनता आ जाएगी। साथ ही यदि द्वितीयेश पंचमेश व पंचमात्पंचमेश (नवमेश) भी लग्नेश युक्त होकर उक्त प्रकार से स्थित होंगे तो मूकता और सन्तानहीनता अवश्य हो जाएगी। सम्बद्ध शुक सूत्रों का पाठ प्रस्तुत है—

(i) **वाक्स्थानाधिपतिर्वाक्पतिश्च षडादिषु त्रिषु चेन्मूको भवति।**

(ii) **एवं पितृमातृभ्रातृकलत्रपुत्रपास्तत्र स्थिताश्चेत्तेषामपि मूकत्वं वाच्यम्।**

(iii) **दोषकृन्न च सर्वत्र यदि स्वर्क्षं गतो ग्रहः।**

(iv) **अथात्मजं ब्रूमः।**

(v) **पंचमधर्मदेहाधिपा ईज्यात् पंचमेशः षडादिषु चेदात्मजाभावः।**

(vi) **सपापाश्चेदात्मजप्रतिबन्धः।**

(vii) लग्नपपुत्रनवमपाः षष्ठाष्टमरिःफगाः सपापाः वंशच्छेदं कुर्वन्ति ।

(viii) षडादिषु त्रिषु पापश्चेदप्यात्मजप्रतिबन्धः ।

(शुकसूत्र)

प्रथम सूत्र में कहा गया है कि वागीश अर्थात् गुरु और वाक्स्थान का स्वामी ये दोनों ६, ८, १२ में हों तो मूकता होगी। हमारे विचार से यहां वाक्स्थान से तात्पर्य द्वितीय स्थान से ही होना चाहिए। कारण यह है कि वाणी व नेत्रादि का मुख्य कारकत्व द्वितीय में ही निहित है। पंचम स्थान में विद्या, पुत्र, बुद्धि, प्रबन्ध, काव्य रचनादि का विशेष विचार होता है। अतः वाणी का विचार पंचम स्थान से गौण ही है। इसी कारण हमने 'वाक्स्थानेश' शब्द का अर्थ द्वितीयेश किया है। जातकालंकार की संस्कृत टीका में पंचमेश का ग्रहण किया है, जो अल्पमान्य ही है।

तृतीय सूत्र में एक विशेष बात बताई है, जो श्लोक में छूट गई है। शुक मुनि कहते हैं कि उक्त वागीश व वाक्स्थानेश यदि ६, ८, १२ में (स्वक्षेत्री मूल कोणी, उच्चगत) हों तो उक्त दोष में काफी कमी आ जाएगी।

चौथे सूत्र में पुत्र विचार प्रारम्भ कर कहते हैं कि १, ५, ९ भावों के स्वामी और बृहस्पति से पंचमेश ये सभी ६, ८, १२ में हों तो सन्तानाभाव होगा।

लेकिन छठे सूत्र में नई बात बताई गई है जो श्लोक में नहीं आ सकी थी। मुनिवर कहते हैं १, ५, ९ व गुरु से पंचम के स्वामी यदि पाप ग्रहों से युक्त हों तो सन्तानाभाव न होकर सन्तान प्राप्ति में रुकावट होती है, जो यत्नपूर्वक दूर की जा सकती है। इस योग में ६, ८, १२ के अतिरिक्त भावों का ग्रहण है।

यदि १, ५, ९ के स्वामी ग्रह पाप युक्त होकर ६, ८, १२ में हो तो वंश विच्छेद योग होगा। इस सूत्र का संग्रह भी श्लोक में नहीं हो सका है। वास्तव में श्लोक व कारिका शैली में यह हीनता बनी ही रहती है। ऐसी स्थिति में गणेश कवि सभी विषयों को श्लोकों में बांध नहीं सके, जो उनकी निर्बलता ही कही जाएगी। इसके अतिरिक्त भी मूकता योग होते हैं। बुध, गुरु, शुक्र, पंचमेश, द्वितीयेश आदि में से

जितने तत्त्व कमजोर होते जाएंगे, वाक् विकलता का अवसर प्रवलतर होता जाएगा।

सन्तान योग :

किंचित्कालं विलम्बः शुभखगसहितास्तेऽथ कर्के सुतर्क्षे
चन्द्रकन्याप्रजावान् प्रमिततनयवांश्चाथ देवेन्द्रपूज्यात्।
क्रूरश्चेत्पञ्चमस्थः सुतभवनगतः स्यात्तदाऽपत्यहीन-
श्छायापुत्रः स्वगेहाद्यदि भवति सुते सूनुरेकस्तदानीम्॥१३॥

यदि लग्न, पंचम व नवम के स्वामी एवं वृहस्पति से पंचमेश त्रिक में होकर भी शुभ ग्रह से युक्त हों तो विलम्ब से सन्तान प्राप्ति समझनी चाहिए।

यदि पंचम भाव में कर्क राशि में चन्द्रमा हो तो कन्याओं की अधिकता व पुत्रों की अल्पता होती है।

यदि वृहस्पति से पंचम स्थान में क्रूर ग्रह स्थित हो तो मनुष्य संतान-हीन होता है। साथ ही वृहस्पति लग्न से पंचम में भी हो।

यदि शनि वृषभ या मिथुन (स्वराशि से पंचम) में हो तो एक पुत्र होता है।

इन योगों का गूढ़ार्थ सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में ही सफलतापूर्वक समझा जा सकता है। अतः पहले सूत्रों पर दृष्टिपात कर लें।

(i) **गुरोः पंचम स्थाने पापः स चात्मजे तिष्ठति तदा वन्ध्यायोगः।**

(ii) **शनिः स्वक्षेत्रे पंचमे तिष्ठति तदा एक एव पुत्रः।**

प्रथम सूत्र में कहा गया है कि वृहस्पति से पंचम स्थान में पाप ग्रह हों और लग्न से पंचम में वृहस्पति (स चात्मजे) हो तो वन्ध्या योग होता है।

सूत्र के दूसरे खण्ड में प्रोक्त वात श्लोक में स्पष्ट नहीं है। 'सुत-भवनगतः' का सम्बन्ध वृहस्पति से दुष्कर है। अतः श्लोक के स्थान पर सूत्र को प्रामाणिक मानकर उक्त अर्थ किया गया है। पंचम में बृहस्पति 'कारको भावनाशाय' के नियम से पंचम को हानिप्रद होगा। लग्न से नवम व पंचमस्थ गुरु से पंचम में पाप योग भी सन्तानहीनता को प्रकट करेगा।

दूसरे सूत्र की भाषा अस्पष्ट है। यदि यथावत् भाषा का अर्थ करें तो अर्थ इस प्रकार होगा—

'पंचम में स्वराशि में शनि हो तो एक ही पुत्र होता है'। लेकिन इस अर्थ को स्वीकार करने पर आगामी श्लोक १४ से सम्बद्ध सूत्र व्यर्थ हो जाएंगे। वहां कुम्भ में पांच पुत्र व मकर में एक पुत्र एवं तीन पुत्री बताई गई हैं।

पं० हरभानु शुक्ल अपनी संस्कृत टीका में श्लोक प्रामाण्य से उक्त अर्थ करते हैं जो हमने ऊपर प्रथम अनुच्छेद में किया है। ऐसी स्थिति में सूत्र का पाठ परिवर्तित या त्रुटित मानना होगा। यदि 'स्वक्षेत्रे' के स्थान पर 'स्वक्षेत्रात्' मान लें तो उक्त अर्थ निकल आता है।

अब इस बात के व्यावहारिक पक्ष को लें। वृष व मिथुन में शनि पांच वर्षों में सभी उत्पन्न पुरुषों की कुण्डली में स्वक्षेत्र से पंचम में ही रहेगा। तब उक्त अवधि के सभी प्राणियों को एक पुत्र ही होना चाहिए। यह बात युक्तियुक्त नहीं लगती है।

अतः हमारा स्पष्ट मत है कि सूत्रकार का आशय यह होना चाहिए कि मकर या कुम्भ लग्न में शनि पंचम में हो तो एक पुत्र होगा। ऐसा मानने से अगले सूत्रों की भी संगति बैठ जाती है तथा अर्थ अधिक सटीक बैठता है।

उदाहरणार्थ यहां एक बांझ स्त्री की कुण्डली में ग्रह स्थिति इस प्रकार है। मिथुन में शनि है, लेकिन लग्न कर्क है। अतः जातकालंकार के मत से पुत्र योग बनता है और हमारे विचार से नहीं बनता है।

कर्क लग्न में ग्रह स्थिति इस प्रकार है। सिंह में गुरु, मिथुन में शनि, कन्या में राहु, तुला में शुक्र, वृश्चिक में सूर्य मंगल व बुध, धनु में चन्द्र स्थित है।

यहां यद्यपि पंचमेश पंचम में ही है। अतः पंचम भाव बली होना चाहिए। लेकिन वह सूर्य बुध से पीड़ित भी है। पंचम कारक बृहस्पति पर पापिष्ठ शनि की पूर्ण दृष्टि है। **'पंचमे प्रसवस्तथा'** के सिद्धान्त से सूर्य व मंगल वहां पुष्प को सुखाने का योग बनाते हैं, जो कि बन्ध्यात्व में चरम रूप से परिणत होता है।

साथ ही फिल्म अभिनेता राजेश खन्ना का मिथुन लग्न में जन्म है और शनि वृषभ में है। यह बात सुविदित है कि इन्हें पुत्र नहीं है, केवल

दो पुत्रियां हैं। जबकि अमिताभ वच्चन का जन्म कुम्भ में है और चतुर्थ में वृषभ शनि है। फलस्वरूप इन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई है।

अन्य सन्तान योग :

कुम्भे चेत्पञ्चपुत्रास्तदनु च मकरे नन्दनेऽप्यात्मजाः स्यु-
स्तिस्रो भौमः सुतानां त्रितयमथ सुतादायको रौहिणेयः।
इत्थं काव्यः शशाङ्को जनुषि च गुरुणा केवलेनैव पुत्राः
पञ्च स्युः केतुराह्वोः क्रियवृषभवने कर्कटे नो विलम्बः ॥१४॥

यदि पंचम स्थान में कुम्भ राशि में शनि हो तो पांच पुत्र होते हैं। यदि पंचम में मकर राशिगत शनि हो तो तीन पुत्रियां होती हैं। स्वक्षेत्री या उच्च भौम पंचमगत हो तो तीन पुत्र होते हैं।

इसी प्रकार पंचम स्थान में बुध, शुक्र या चन्द्रमा स्वक्षेत्र में हो तो वे भी कन्या सन्तति देने वाले होते हैं।

यदि अकेला स्वक्षेत्री बृहस्पति पंचम में हो तो पांच पुत्र होते हैं।

यदि पंचम में राहु या केतु, मेष या कर्क में हो तो सन्तान प्राप्ति में विलम्ब नहीं होता है।

इसके विपरीत ग्रह स्थिति में उक्त प्रकार से ग्रह योग वने तो विलम्ब ही होता है, ऐसा आशय समझना चाहिए।

इस श्लोक से सम्बद्ध सूत्रों को देखने से उक्त अर्थ विलकुल स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है।

(i) कुम्भे चेत् पंच पुत्राः। (ii) मकरे एकः पुत्रः कन्या त्रयम्।
(iii) भौमः स्वक्षेत्रे पंचमे चेत् त्रयः पुत्राः। (iv) बुधश्चेत्कन्याजनकः।
(v) शुक्रःकन्याजनकः। (vi) चन्द्रोऽपि कन्या जनकः।
(vii) केवलेन गुरुणापंच पुत्राः।
(viii) राहुकेतुभ्यां वृषाजकर्कटान् विहाय वंशनाशः। (शुक सूत्र)

पंचमस्थ शनि कुम्भगत हो तो पांच पुत्र, मकरगत हो तो एक पुत्र व तीन कन्याएं देता है।

मंगल पंचम में मेष, वृश्चिक राशि में तीन पुत्र, बुध पंचम में स्व-क्षेत्री होकर कन्याप्रद है। इसी प्रकार शुक्र या चन्द्र पंचम में स्वक्षेत्री हो तो भी कन्या सन्तति होती है।

पंचम में स्वक्षेत्री गुरु अकेला हो तो पांच पुत्र होते हैं। मेष, वृष,

कर्क में राहु या केतु पंचम में नहीं हो तो वंश हानि व उक्त तीन राशियों में हो तो शीघ्र सन्तान होती है।

साथ ही यह आशय भी स्पष्ट हो जाता है कि पंचम में शनि, गुरु, मंगल, चन्द्र, शुक्र स्वक्षेत्र व उच्च में न हो तो सन्तान प्राप्ति में विलम्ब होगा। इसी प्रकार मेष, वृष कर्क राशियों के अतिरिक्त राहु, केतु पंचम में हो तो भी अति विलम्ब होगा।

हमने जातकालंकार की प्रसिद्ध टीकाओं से भिन्न अर्थ का ग्रहण सूत्रों के आधार पर ही किया है। हमारे विचार से यहां सूत्रों व श्लोक में विरोध नहीं देखना चाहिए।

हमने अनुभव में पाया है कि उक्त राशियों में इन ग्रहों की उच्च राशियों का शुभ फल व नीच राशियों का अशुभ फल भी लेना चाहिए।

शनि व मंगल अनुभव में निश्चय से पुत्र कारक सिद्ध हुए हैं। चन्द्रमा, शुक्र, वुधादि कन्याओं की अधिकता अवश्य करते हैं। लेकिन अकेला वृहस्पति पंचम में निज क्षेत्र मूल त्रिकोणोच्च को छोड़कर अन्य राशियों में चाहे अकेला भी हो तो भी वह पुत्रों की तो बात ही क्या, सन्तान की अत्यन्त कमी को ही प्रदर्शित करेगा। अतः पंचम में गुरु, कर्क, मीन धनु में यदि हो तो पुत्र अवश्य होते हैं। उक्त सभी योगों में आजकल आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के युग में और 'दो या तीन बस' का प्रचलन हो जाने से उक्त संख्या के विषय में आग्रह न कर पुत्रों या पुत्रियों की आनुपातिक अधिकता ही यथायोग बतानी चाहिए।

सन्तान प्रतिबन्ध एवं उपाय :

पापो वा वासवेज्यः सुखभवनगतः पञ्चमे वाऽष्टमे वा
शीतांशुः सन्ततेः स्यात् खगुणमितसमातुल्य एव प्रबन्धः।
यावन्तः पापखेटास्तनयगृहगताः सौम्यदृष्ट्या न दृष्टा-
स्तावद्वर्षप्रमाणो नियतमिह भवेत्सन्ततेर्वा विलम्बः ।।१५।।

यदि जन्म लग्न में सन्तान योग होने पर चतुर्थ स्थान में पाप ग्रह या बृहस्पति हो या पंचम अष्टम में चन्द्रमा हो तो ३० वर्ष तक सन्तान प्रतिवन्धक योग होता है।

अथवा पंचम स्थान में जितने पापग्रह शुभग्रहों के दृग्योग से रहित

होकर पंचम में स्थित हों, उतने ही वर्षों का प्रतिबन्ध समझना चाहिए।

सन्तान प्रतिबन्धक योग अधिक हों, सन्तान योग कम बली या संख्या में कम हों तो प्रतिबन्ध की अवधि अधिक भी हो सकती है। लेकिन सन्तान योगों की अति निर्बलता व प्रतिबन्धकों की बलवत्ता होने पर भी अनेक स्थानों पर सन्तानाभाव देखने में आता है, अत: बुद्धिपूर्वक फलादेश कहना चाहिए। सम्बद्ध शुकसूत्र इस प्रकार है—

(i) एतेषु किंचित् प्रतिबन्धः।

(ii) सुखगः पापो गुरुर्वा चन्द्रःपंचमेऽष्टमे वा चेद् द्वात्रिंशत् वर्ष प्रतिबन्धः।

यहां पंचमस्थ पापग्रहों के आधार पर प्रतिबन्ध द्योतक सूत्र नहीं है। चतुर्थ में बृहस्पति हो, यह एक योग हुआ, पंचम में चन्द्रमा हो, यह द्वितीय एवं अष्टम में चन्द्रमा हो, यह तृतीय प्रतिबन्धक योग बताया गया है। लेकिन सूत्रों में प्रतिबन्ध ३२ वर्ष की आयु तक बताया गया है।

प्रतिबन्ध निवारणोपाय :

तत्प्राप्तिर्धर्ममूला तदनु बुधकवी शङ्करस्याभिषेकाच्च-
चन्द्रश्चेत्तद्वदेव त्रिदिवपतिगुरुर्मन्त्रयन्त्रौषधीनाम्।
सिद्ध्या मन्दारसूर्या यदि शिखितमसी तत्र वंशेशपूजा,
कार्याऽऽम्नायोक्तरीत्या बुधगुरुनदपाः क्षिप्रमेवात्र सिद्धिः ॥१६॥

सन्तान की प्राप्ति धर्ममूलक होती है, अर्थात् पुण्योदय के प्रभाव से सन्तानोत्पत्ति होती है।

यदि बुध, शुक्र या चन्द्रमा सन्तान प्रतिबन्धक हों तो रुद्राभिषेक कराने से सन्तान प्राप्ति हो जाती है।

यदि बृहस्पति सन्तानरोधक हो तो मन्त्र, यन्त्र व औषध से सन्तान हो सकती है।

यदि सूर्य, मंगल, राहु, शनि, केतु प्रतिबन्धक हों तो अपने कुलदेवता की पूजा शास्त्रोक्त रीति से करनी चाहिए।

यदि बुध, गुरु व नवमेश प्रतिबन्धक हों तो उक्त उपायों से जल्दी ही सिद्धि होती है।

बुध, चन्द्र, शुक्र कृत प्रतिबन्ध के निवारणार्थ रुद्राष्टाध्यायी से एकादश रुद्राभिषेक या शतरुद्रियाभिषेक विधिपूर्वक करवाना चाहिए।

बृहस्पतिकृत प्रतिबन्ध के निवारणार्थ मन्त्र सिद्धि, यन्त्र सिद्धि या औषध सिद्धि का प्रयोग करना चाहिए। मन्त्र सिद्धि उपाय हेतु हरिवंश श्रवण, भागवत महापुराण सप्ताह यज्ञ, सन्तान गोपाल का विधान, आदित्य सप्तमी व्रत, महामृत्युञ्जय मन्त्र या दुर्गापाठ 'सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः' आदि से सम्पुटित करें। पुत्रेष्टिविधान-यज्ञ भी उपयोगी होता है।

यन्त्र सिद्धि के लिए सूर्य यन्त्र, मंगल यन्त्र तथा अन्य सन्तानदायक यन्त्रशास्त्रोक्त यन्त्रों का विधिपूर्वक निषेवण करना चाहिए।

औषधि सिद्धि के लिए आयुर्विज्ञानोक्त पुंसवनी, शुक्रवर्धकवटी आदि का सेवन करें और कुशल चिकित्सक की देखरेख में आवश्यक परीक्षणादि करवाकर चिकित्सा करवाएं।

कुलदेवता की पूजा के लिए अपने इष्ट देवी देवता अथवा गायत्री पुरश्चरण कराना चाहिए। इसी प्रतिबन्ध को लोग पितरबाधा भी कहते हैं।

नवमेश, बुध व गुरु बलवान् हों तो उक्त धार्मिकानुष्ठान से अवश्य ही फल मिलता है। यही विषय सूत्रों में यथावत् बताया गया है।

(i) **धर्मेण तत्र सिद्धिः।**

(ii) **चन्द्रबुधशुक्राश्चेद् रुद्रानुष्ठानम्।**

(iii) **गुरुणा मन्त्रयन्त्रौषधसाधनम्।**

(iv) **भौमराहुशनैश्चराश्चेत् कुलदेवतापूजनम्।**

(v) **इति संक्षेपः।**

(vi) **धर्मपबुधगुरूणां बले धर्मोवाच्यः।**

(vii) **तेषां शुभग्रहवीक्षणेन विशेषेण क्रतुसिद्धिः।**

सातवें सूत्र का विषय श्लोक में समाहित नहीं हो पाया है। तदनुसार बुध, गुरु, नवमेश पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो विशेषतया धार्मिक अनुष्ठान की सफलता मिलती है।

षष्ठ भाव विचार

शरीर में घाव होने के योग :

षष्ठेशे पापयुक्ते तनुनिधनगते नुः शरीरे व्रणाः स्यु-
श्चादेश्यं तज्जनित्रीजनकसुतवधूबंन्धुमित्रादिकानाम् ।
इत्थं तत्स्थानगामी शिरसि दिनमणिश्चानने शीतभानुः
कण्ठे भूमीतनूजो हृदि शशितनयो वाक्पतिर्नाभिमूले ॥१७॥

यदि षष्ठ स्थान का स्वामी पाप ग्रहों से युक्त होकर लग्न या अष्टम स्थान में स्थित हो तो मनुष्य के शरीर में व्रण होते हैं।

इसी पद्धति से माता, पिता, पुत्र, वधू, बन्धु, मित्रादि के शरीर में भी व्रण निर्देश करना चाहिए।

यदि उक्त लग्न या अष्टम में सूर्य हो तो सिर में, चन्द्रमा से मुख में, मंगल से गले में, बुध से हृदय प्रदेश अर्थात् छाती पर और बृहस्पति से पेट में व्रण की स्थिति बतानी चाहिए।

षष्ठ स्थान से रोग व व्रण का विचार शास्त्र सम्मत है। लेकिन हमारे विचार से श्लोक की बात अधूरी है। यदि षष्ठ भाव में पाप योग हो, षष्ठेश पापयुक्त होकर १, ६, ८ भावों में कहीं हो तो उक्त तीनों ही परिस्थितियों में न्यूनाधिक रूप से घाव लगने की स्थिति बनती है। इस सन्दर्भ में भी हम भाव, भावेश व कारक की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

ध्यान रहे, इन सभी व्रण कारक योगों में पाप ग्रहों का योग होना आवश्यक है। अन्यथा षष्ठेश, अष्टमेश व द्वादशेश पापरहित होकर इन्हीं स्थानों में क्षेत्र परिवर्तन से स्थित हों तो विपरीत राजयोग बनता है। वैसे अकेला या शुभयुक्त षष्ठेश भी लग्न में जाकर मनुष्य को पराक्रमी एवं दबंग बनाता है। हमारी व्याख्या सीधे शुकसूत्रों पर आधारित है और अनुभव और तुलनात्मक चिन्तन से इसे दृढ़ता प्रदान की गई है। इस श्लोक से सम्बद्ध **शुकसूत्र** इस प्रकार हैं—

(i) **अथ षष्ठस्थानाधिपः सपापो देहेऽष्टमे वा स्थितश्चेद् देहव्रणा भवन्ति ।**

(ii) **एवं कर्मस्थानेऽपि वाच्यम् ।**

(iii) **एवं पितृमातृभ्रातृकलत्रपुत्राणां तत्कारकभावस्थानपयोगेन व्रणं वाच्यम् ।**

(iv) **व्रणस्थलानि ।**

(v) **आदित्यः शिरसि ।**

(vi) **चन्द्रः मुखे ।**

(vii) **भौमः कण्ठे ।**

(viii) **बुधो वक्षसि ।**

(ix) **गुरुर्नाभेरधः ।**

(x) **अनेन स्थानेन जातिचिन्ता शुभचिन्ता च ।** (शुकसूत्र)

स्पष्ट है कि प्रथम सूत्र की व्याख्या हो चुकी है। तृतीय सूत्र में प्रोक्त कारक, भाव व स्थानेश के सम्बन्ध से हमने प्रथम सूत्रार्थ में भी भाव, भावपति व कारक ग्रह के सम्बन्ध से योगों की परिकल्पना की है।

द्वितीय सूत्र की बात श्लोक में कहीं भी नहीं है। सूत्रकार का स्पष्ट मन्तव्य है कि षष्ठेश पापयुक्त होकर यदि दशम स्थान में स्थित हो तो भी व्रणयोग होगा। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सपाप षष्ठेश यदि १, ६, ८, १० भावों में हो या भावकारक व व्रणकारक मंगल उक्त प्रकार से स्थित हो तो व्रण योग बनेंगे। किस ग्रह से शरीर के किस अंग में व्रण बनेंगे इसका उल्लेख सूत्र ४ से ६ तक व आगामी श्लोक से सम्बद्ध सूत्रों में स्पष्टतया प्रतिपादित है। ये व्रण सामान्य, मध्यम व दीर्घकालीन या दीर्घाकार होंगे। यदि उक्त ग्रहों (पाप षष्ठेश व तत् कारक) की १, ६, ८, १० भावों पर दृष्टि या युति हो तो सामान्य व्रण योग तो अवश्य रहेगा। कहीं भी षष्ठेश व कारक की पापिता व पापयुति भी व्रण कारक होती है। किसी भी प्रकार से इन योगों में शनि का सम्बन्ध बने, तो घाव के स्थान चिरस्थायी हो जाते हैं।

उदाहरणार्थ हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** के पृ० ७१ पर उद्धृत कन्या लग्न वाली कुण्डली को लें। वहां षष्ठेश स्वयं शनि है जो चतुर्थ स्थान में बैठकर षष्ठ, दशम व लग्न पर पूर्ण दृष्टि रख रहा है। अतः पाप षष्ठेश व षष्ठकारक की १, ६, १० तीनों भावों पर समान रूप से दृष्टि होने से व्रण योग घटित होता है। फलस्वरूप इन्हें जांघ व मुख

पर बड़े घाव लगे थे, जिनके चिन्ह स्पष्ट व गहरे हैं। शनि योगकारक होने से ये निशान समाप्त नहीं हुए हैं।

इसी प्रकार वहीं पर पृष्ठ ८१ पर कर्क लग्न वाली कुण्डली देखें। वहां श्लोकोक्त योग नहीं है, लेकिन हमारे विचार से षष्ठकारक व चन्द्र से षष्ठ स्थान में अत्यन्त पापयुति जीवन में २-४ घाव देने में अवश्य सक्षम है। स्पष्ट है कि ये घाव शरीर पर अपनी जीवनपर्यन्त निशानी रखेंगे। परिणामस्वरूप इनके हाथ पर दो गहरे (२"×१" के लगभग) घाव लगे थे और बाएं पैर में भी लगभग इतना ही बड़ा घाव है। ये तीनों ही निशान केवल प्लास्टिक सर्जरी से ही मिटाए जा सकते हैं।

इसी पद्धति से देखना चाहिए कि माता, पिता, मित्र आदि के स्थानेशों व कारकों के अथवा इनसे सम्बद्ध भावों में अथवा उनसे अष्टम स्थानों में या ६, १० भावों में पूर्वोक्त प्रकार से पापयोग या दृष्टि हो तो उन सम्बन्धियों के शरीर में व्रण कहना चाहिए। उदाहरणार्थ लघुपाराशरी पृ० ८१ पर उद्धृत कुण्डली को ही लें। वहां सप्तम भाव से षष्ठेश बुध स्वयं सप्तम में सूर्य (पत्नी का अष्टमेश) से युक्त होकर पापतम शनि से दृष्ट है। अतः पत्नी के शरीर में दो बार बड़े गहरे व्रण बने थे।

नेत्र रोगी योग :

नेत्रे पृष्ठे च शुक्रो दिनकरतनयः स्यात्पदे चाधरे चेत्-
केतुर्वा सैंहिकेयस्तदनु तनुपतिर्भौमवित्क्षेत्रसंस्थः।
आभ्यामालोकितः सन् भवति हि कतिचित्स्थानगो वा,
तदानीं नेत्ररोगी नरः स्यात्प्रवरमतियुतैर्होरिकैर्ज्ञेयमेवम् ॥१८॥

इसका पिछले श्लोक से सम्बन्ध है। शुक्र व्रण कारक होने पर आंख व कमर में, शनि से पैरों में, राहु या केतु से होंठों में व्रण होते हैं।

यहां से नेत्र रोगों के विषय में बताया जा रहा है। यदि लग्नेश, मंगल या बुध की राशि में हो या इनसे दृष्ट हो तब मनुष्य के नेत्रों में विकार होता है, ऐसा श्रेष्ठ दैवज्ञों का मत है।

व्रणयोगों के विषय में पिछले श्लोक की व्याख्या में बता चुके हैं। अब नेत्र रोग के सम्बन्ध में विचार अपेक्षित है। अनुभव में आया है

कि लग्नेश यदि मंगल या वुध के क्षेत्र में हो, लग्नेश पर वुध या मंगल की दृष्टि हो, द्वितीय द्वादश में चन्द्रमा या शुक्र हो अथवा अष्टम स्थान में मन्द प्रकाश ग्रह हो अथवा सूर्य व शुक्र ६, ८, १२ में लग्नेश युक्त हों या चन्द्र शुक्र त्रिक में लग्नेश के साथ हों तो नेत्र ज्योति की उत्तरोत्तर अधिक क्षीणता होती है। इनमें से कई योग एकत्र हों तो प्रभाव बढ़ जाएगा। ये सभी योग अनुभूत हैं और जीवन में आप इन्हें खरा पाएंगे। सूत्र प्रस्तुत हैं—

(i) **शुक्रो नेत्रे पृष्ठे च।**

(ii) **शनिः पादयोः।**

(iii) **राहुकेतू अधरे।**

(iv) **अत्र मेषादि स्थानान्यपि।**

(शुकसूत्र)

इनमें चतुर्थ सूत्र पर दृष्टिपात करें तो एक नई बात हस्तगत होती है। सूत्रकार कहते हैं कि सूर्यादि ग्रह मेषादि राशियों में कालपुरुष के अंगविभागानुसार तत्तद् अंगों में रोग या व्रणकारक हो सकते हैं।

नेत्र रोग से सम्बन्धित कुछ सूत्र पिछले श्लोक ६ की व्याख्या में प्रस्तुत किए गए हैं। एक सूत्र यहां प्रस्तुत है—

(i) **लग्नाधिपः कुजबुधक्षेत्रस्थितस्तथा यत्र क्वापि स्थिताभ्यांवीक्षितः स नेत्ररोगी।**

(शुकसूत्र)

पूर्वोक्त **लघुपाराशरी विद्याधरी** पृ० ८१ पर उद्धृत कर्क लग्न वाली कुण्डली यहां प्रस्तुत है।
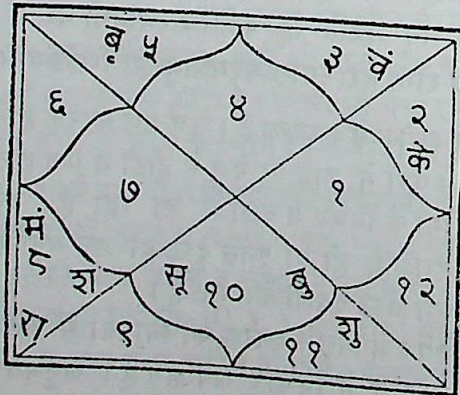
इस कुण्डली में लग्नेश चन्द्रमा बुध के क्षेत्र मिथुन में स्थित है, यह एक योग बना।

बुध क्षेत्र स्थित चन्द्रमा पर मंगल की पूर्ण दृष्टि है, यह दूसरा योग हुआ। द्वादश व अष्टम (त्रिक) में शुक्र व चन्द्रमा दोनों हैं। अत: इसका प्रभाव और वढ़ जाता है। फलस्वरूप इनकी नेत्र ज्योति काफी क्षीण है। एक और उदाहरण पर दृष्टिपात कीजिए—
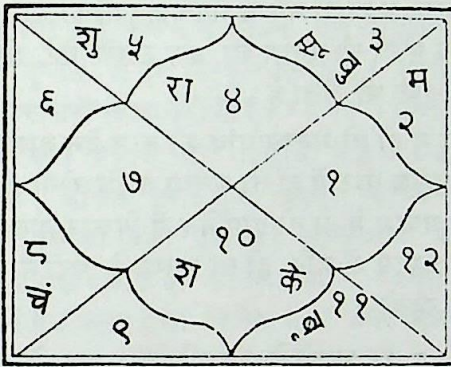
ये भी एक अर्से से नजर का चश्मा लगाते हैं। लग्नेश मंगलगृह में मंगल से दृष्ट है, अत: योग घटित होता है।

हमारे **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** पृ० ४६२ पर उद्धृत कुण्डली में देखें कि मीन लग्न में जन्म है, जन्मेश गुरु स्वक्षेत्री दशमस्थ है, मंगल, बुध की दृष्टि भी नहीं है। चन्द्रमा मंगल क्षेत्र में है और द्वादश में शुक्र है। इन्हीं दो कारणों से भी इनकी ज्योति कम है और लम्बे समय से दूर की नजर का चश्मा लगाते हैं।

इसी प्रकार लघुपाराशरी विद्याधरी पृ० ७० पर मीन लग्न वाली कुण्डली देखें। वहां लग्नेश चतुर्थ में बुध की राशि में है और अष्टम में शुक्र भी है। मंगल से लग्नेश दृष्ट है। अत: ये बड़े नम्बर का चश्मा लगाते हैं।

निष्कर्ष यही है कि इन पूर्वोक्त योगों में नेत्र रोग से तात्पर्य हमने केवल नेत्र ज्योति की क्षीणता में ही पाया है।

षष्ठेश के अन्य योग :

षष्ठेशे लग्नयाते भवति हि मनुजो वैरिहन्ता धनस्थे-
पुत्रात्तार्थोऽतिदुष्टः सहजभवनगे ग्रामदुःखाकरः स्यात् ।
नाभिस्थाने च रोगी तनुनिधनपती शत्रुभावस्थितौ ना,
नेत्रे वामेतरे स्यादसुरकुलगुरुः सूर्यजस्त्वङ्घ्रिरोगी ।।१६।।

यदि षष्ठेश लग्न में हो तो मनुष्य अपने शत्रुओं का नाशक होता है।

षष्ठेश द्वितीय में हो तो मनुष्य का धन उसके बेटे छीन लेते हैं। ऐसा व्यक्ति अति दुष्ट भी होता है।

षष्ठेश तृतीय में हो तो मनुष्य गांव को कष्ट देने वाला होता है।

लग्नेश व अष्टमेश षष्ठ में हों तो मनुष्य नाभि रोगी होता है।

शुक्र षष्ठ या अष्टम में हो तो दाएं नेत्र में विकार होता है।

यदि षष्ठ या अष्टम में शनि हो तो मनुष्य के पैरों में रोग होने की सम्भावनाएं बनी रहती हैं।

सामान्यतः ६, ८, १२ भावों के स्वामी जिस भाव में जाते हैं, उसी भाव की हानि करते हैं, लेकिन ग्रन्थकार लग्न में षष्ठेश की स्थिति शत्रुनाशक मानते हैं। इस योग में व्यक्ति दबंग स्वभाव, प्रभावशाली व्यक्तित्व व सामाजिक स्थिति वाला होता है। ऐसे व्यक्ति के विरोधी उसका प्रायः कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं। यदि षष्ठेश शुभ ग्रह हो तो ऐसा व्यक्ति साम नीति से और क्रूर ग्रह हो तो दण्डादि से विरोधियों को वश में रखता है।

हमारे विचार से यह कोई विशेष महत्त्वपूर्ण योग नहीं है। इससे सम्बन्धित शुकसूत्र भी नहीं है। हम समझते हैं कि शुभ ग्रह षष्ठेश होकर भी यदि लग्न में हो या षष्ठ में हो तो विरोधी पक्ष भी उस व्यक्ति का आदर करता है, लेकिन अनुभव में यह बात बहुत से स्थानों पर नहीं घटती है। रामचन्द्रादि की प्रसिद्ध कुण्डली में षष्ठेश गुरु लग्न में देखकर ही ग्रन्थकार इस निष्कर्ष पर पहुंचे होंगे। हम इस बात से अंशतः सहमत हैं। रामचन्द्र, आदि शंकराचार्य, जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू, रामकृष्ण परमहंस आदि की कुण्डलियों में षष्ठेश लग्न या षष्ठ में है। फलस्वरूप इनकी सामाजिक व आध्यात्मिक

स्थिति क कारण इनके विरोधी भी इनका सम्मान करते थे। लेकिन सब जगह यह षष्ठेश शुभ ही है। अशुभ षष्ठेश लग्न में जाकर हानि ही करेगा।

षष्ठेश द्वितीय भाव में हो तो मनुष्य दुष्ट होता है और उसके पुत्रों के वश में व्यक्ति का धन हो जाता है। इस बात से भी सहमत होना कठिन है। हमारे विचार से द्वितीयेश षष्ठ में या षष्ठेश द्वितीय में हो तो मनुष्य अपनी कुल स्थिति से अधिक धन अर्जित करता है। उसके स्वभाव की दुष्टता में हमें बिल्कुल सन्देह है। उदाहरण से समझिए। मत्कृत **लघुपाराशरी विद्याधरी** के पृ० ६९ पर उद्धृत रवीन्द्रनाथ टैगोर की कुण्डली देखें। षष्ठेश सूर्य द्वितीय में है। वे धनी थे, यह बात सर्वविदित है। लेकिन उन्हें दुष्ट कहना विडम्बना मात्र ही होगा। मुहम्मद अली जिन्ना (वही, पृ० ६३) की कुण्डली में षष्ठेश चन्द्रमा द्वितीय में है। पीछे श्लोक १८ की व्याख्या में उद्धृत कुण्डली में षष्ठेश गुरु द्वितीय में है। अतः ऐसा व्यक्ति मात्र धनी होता है और प्रायः स्वार्जित सम्पत्ति का कम भोग करता है।

षष्ठेश तृतीय में हो तो मनुष्य क्रूर स्वभाव वाला, सारे मुहल्ले, बस्ती को आतंकित करने वाला होता है। यदि यह षष्ठेश क्रूर हुआ तो फिर करेला और नीच चढ़ा की उक्ति चरितार्थ होगी। हम इस बात से सहमत हैं। शुभ ग्रह होगा तो ऐसा व्यक्ति परमानभंजक, पराक्रमी व निडर होता है।
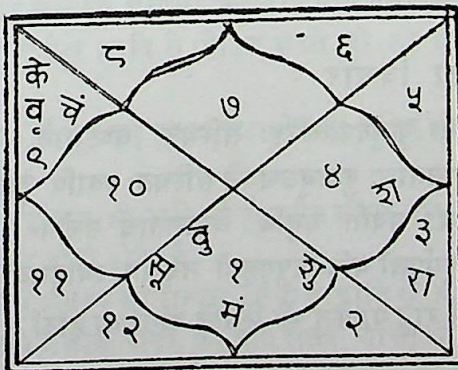
सम्राट अकबर (लघुपाराशरी विद्याधरी पृ० ४५) की कुण्डली में षष्ठेश गुरु तृतीय में है। फलस्वरूप ये सदैव शत्रुओं पर भारी रहे।

लेकिन हिटलर की कुण्डली में षष्ठेश गुरु पापदृष्ट युत है, अतः वह अधिक क्रूर सिद्ध हुआ था। पृष्ठ ४९ की कुण्डली पर दृष्टिपात करें।

श्लोक में आए **'नाभिस्थाने च रोगी'** का सम्बन्ध लग्नेश व अष्टमेश से है। तृतीयस्थ षष्ठेश से नहीं है। अतः हमने सर्वथा नवीन अर्थ किया है। प्रमाणस्वरूप अधोलिखित सूत्र देखिए—

(i) **अष्टमदेहाधिपौ षष्ठस्थानस्थितौ चेन्नाभिरोगी।**

(ii) **शुक्रेण नेत्ररोगी।**

(iii) **शनिनापाद रोगी।**

(iv) **राहुकेतुभ्यामधररोगी दन्तरोगी च।**

(शुकसूत्र)

लग्नेश व अष्टमेश यदि षष्ठ में हों तो नाभि रोगी होता है। षष्ठस्थ शुक्र व राहु केतु का विचार पिछले श्लोक में हो चुका है। यहां षष्ठस्थ शनि से पाद रोगी एवं सूत्र सं० १ के अर्थ की गवेषणा करनी अभीष्ट है।

पंचम स्थान आमाशय प्रदेश का प्रतिनिधि होने से षष्ठ भाव में नाभिप्रदेश व नाभिमूल आ जाता है। अतः रोग स्थान में लग्नेश व अष्टमेश का योग उक्त स्थान में पीड़ादायक होगा।

शनि स्वयं लंगड़ा ग्रह है, अतः रोग स्थान में बैठकर यह पैरों में रोगोत्पत्तिकर्ता व षष्ठकारक होकर वहीं षष्ठ में रहने से अधिक कष्टकारक सिद्ध होगा।

अन्य रोगों का विचार :

दन्ते दन्तच्छदे वा कुमुदपतिरिपुः संस्थितः षष्ठभावे,
केतुर्वा लग्ननाथः कुजबुधभवने संस्थितः क्वापि दृष्टः।
स्वेन प्रत्यर्थिना वा भवति जनुषि चेदासनार्धे सरोग-
स्तौ भूमीसूर्यपुत्रौ यदि रिपुगृहगौ तद्भवः स्याद्गदो नुः ॥२०॥

षष्ठ स्थान में राहु या केतु की स्थिति दांतों या होठों में रोगकारक होती है।

लग्नेश यदि मंगल या बुध की राशि में स्थित हो और उसे शत्रु ग्रह देखता हो तो मनुष्य को नितम्ब व गुदा प्रदेश में रोग होता है।

यदि षष्ठ में शनि व मंगल हो (अथवा शनि मंगल की अधिष्ठित राशियों के स्वामी १, ७ में हों) तो इनसे सम्बन्धित रोग अर्थात् मंगल से रक्त विकार, शस्त्र व्रण, स्फोटक व उदर रोग आदि और शनि से वायु विकार, पैरों के रोग व गण्डादि रोग होते हैं।

(i) **लग्नाधिपः कुजबुधक्षेत्रस्थितो यत्र कुत्रापि स्वरिपुणा वीक्षितोऽप्येष आसने रोगी।**

(ii) **एतौ रिपुगतौ तदधिपौ देहेऽष्टमे वा स्थितौ चेत् स एव रोगी स्यात्।**

(शुकसूत्र)

सूत्रानुसारी अर्थ का ग्रहण ही हमने किया है। विशेष व्युत्पत्ति के लिए पाठक स्वयं नियमों की परीक्षा करें।

सामान्यतः रोगी रहने के योग :

प्रालेयांशौ रिपुस्थे खलखगसहिते मानवो रोगवान् स्यात्,
क्रूरैर्निष्पीडितश्चेत्तनुसदमगतः शीतरश्मिस्तदानीम्।
क्रूरे केन्द्रालयस्थे यदि शुभविहगैर्नेक्षिते रोगवान् स्यात्-
स्मिन् काव्यालयस्थे कुजगुरुकविभिर्नेक्षिते तद्वदेव॥२१॥

यदि षष्ठ स्थान में चन्द्रमा क्रूर ग्रहों से युक्त हो तो मनुष्य सामान्यतः रोगी रहता है।

इसी प्रकार लग्नस्थ चन्द्रमा को यदि पाप ग्रह (श० म० रा० सू०) दृष्टि, योग या कर्तरी आदि से पीड़ित करते हों तो भी मनुष्य रोगी रहता है।

केन्द्र स्थान में क्रूर ग्रह शुभ दृष्टि योग से रहित हो तो भी मनुष्य रोगी रहता है।

यदि क्रूर ग्रह शुक्र की राशि में हो और मंगल, गुरु, शुक्र से दृष्ट न हो तो भी मनुष्य रोगी होता है।

इन योगों में मनुष्य सामान्यतः कफ वातादि से पीड़ित रहता है। चन्द्रमा पर पाप प्रभाव रोगों की प्रतिरोधक शक्ति में क्षीणता देता है, जिससे ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही रोगों की चपेट में आ जाया करता है।

पुंल्लग्ने स्वीयतुङ्गे रिपुभवनपतौ वीक्षितेऽसन्नभोगै-
रङ्गे नूनं नाराणमरिजनवशतः स्याद्गदो गूढरूपः ।
रिःफस्थाने स्थिते चेदरिसदनपतौ सिंहिकापुत्रयुक्ते,
किंवा सप्ताश्वयुक्ते परगृहवसतिर्नीचवृत्तिर्नरः स्यात् ॥२२॥

यदि षष्ठेश पुरुष राशि लग्न अर्थात् विषम राशि वाले लग्न में स्थित हो, अथवा षष्ठेश अपनी उच्च राशि में हो और इन दोनों ही स्थितियों में वह क्रूर ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो जातक के शरीर में उसके शत्रुओं द्वारा बड़ा घाव या रोगादि विकार उत्पन्न करा दिया जाता है ।

यदि षष्ठेश, राहु या सूर्य से युक्त होकर, द्वादश भाव में गया हो तो ऐसा व्यक्ति परोपजीवी होता है । वह दूसरों पर निर्भर रहता है । साथ ही निम्न श्रेणी के कार्य से जीविका कमाता है ।

सप्तम भाव विचार

विवाह योग विचार :

यावन्तो वा विहङ्गा मदनसदनगाश्चेन्निजाधीशदृष्टा-
स्तावन्तो निर्विवाहास्त्वथ सुमतिमता ज्ञेयमित्थं कुटुम्बे ।
कार्यो होरागमज्ञैरधिकबलवतां खेचराणां हि योगा-
दादेश्यं तत्रवीर्यैरविविधुकुभुवामङ्गदिक्शैलसंख्यम् ॥२३॥

सप्तम स्थान में जितने ग्रह हों, उतने ही विवाह होते हैं । लेकिन उन पर सप्तमेश की दृष्टि आवश्यक है ।

इसी प्रकार कुटुम्ब स्थान अर्थात् द्वितीय स्थान में जितने ग्रह द्वितीयेश से दृष्ट हों, उतने ही विवाह होते हैं ।

बुद्धिमान् दैवज्ञों को अधिक बल वाले ग्रह के योगों से विवाह की संख्या का विचार करना चाहिए ।

इस प्रसंग में सूर्य, चन्द्र व मंगल का क्रमशः ६, १०, ७ रूपा बल होता है ।

शेष ग्रहों का ६ रूपा वल होता है, ऐसा पद्धति के नियम से स्वतः सिद्ध है। अर्थात् शेष ग्रह ६ रूपा से अधिक वली होने पर बली माने जाते हैं।

इस श्लोक की व्याख्या प्राचीन टीकाकारों ने उक्त प्रकार से ही की है। लेकिन शुकसूत्रों के सन्दर्भ में इन पर नई रोशनी पड़ती है। सामान्यतः ३ रूपा या अंश तक षड् वल होने पर ग्रह निर्बल, ६ से कम होने पर मध्यम वली और ६ से अधिक बल होने पर वलवान् माना जाता है। यह बात पद्धति ग्रन्थों से सिद्ध है तथा हमारे विचार से भी यही बात यहां उपयुक्त है। लेकिन सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में यह बात अटपटी लगती है। सूत्रों का पाठ प्रस्तुत है—

(i) **कलत्राधिपेन कुटुम्बाधिपेन वा दृष्टा यावन्तो ग्रहाः कलत्रस्थानं कुटुम्बस्थानं वा गताः तावत् संख्यकानि कलत्राणि भवन्ति।**

(ii) **अथवा बलाधिक्यात्।**

(iii) **तत्र रवेः षट्।**

(iv) **चन्द्रस्य दश।**

(v) **भौमस्य सप्त।**

(vi) **बुधस्य सप्तदश।**

(vii) **गुरोः षोडश।**

(viii) **शुक्रस्य विंशतिः।**

(ix) **शनेरेकोनविंशतिः।**

(x) **राहोः।**

(xi) **केतोः।**

(xii) **इत्यादि ज्ञेयम्।**

(xiii) **सप्तमेन कलत्र चिन्ता।**

(शुकसूत्र)

श्लोक की प्रथम पंक्ति का अर्थ सूत्रानुसारी हमने किया है। यद्यपि **'कुटुम्ब'** शब्द का अर्थ प्राचीनों ने **'अन्य परिवारजन'** किया था, लेकिन सूत्रानुसार सप्तम या द्वितीय में जितने ग्रह सप्तमेश व द्वितीयेश से दृष्ट हों उतनी ही स्त्रियां होती हैं, यह बात सिद्ध होती है तथा यही उपयुक्त है।

लेकिन बल के सन्दर्भ में सूत्रकार ने जो संख्या बताई है वह संख्या वास्तव में विंशोत्तरी दशा में इन ग्रहों के दशा वर्षों की संख्या ही है। इसी आधार पर सूर्य, चन्द्रमा व मंगल का बल भी गणेश कवि ने ६, १०, ७ क्रमशः माना है जो सूत्रानुसारी है। लेकिन शेष ग्रहों के बल का उल्लेख श्लोकों में नहीं है।

यह बल विचार प्राचीन जैमिनिमत या पाराशरमत या यवन मतानुसार पद्धति ग्रन्थों के भी विरुद्ध है। हमारी अल्प बुद्धि में इस सूत्रोक्त बल का तारतम्य अवगत नहीं होता है। विद्वान् पाठक इस प्रकरण की प्रामाणिकता पर विचार करें।

अस्तु, विवाह संख्या के विषय में भी आजकल दैवज्ञों को आधुनिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। आजकल एकाधिक विवाह गैर कानूनी हैं। अतः सामाजिक, पदवी प्रतिष्ठा व स्थिति देखकर एकाधिक विवाह की बात कहनी चाहिए। सामान्यतः द्वितीयेश व सप्तमेश पर शुभ प्रभाव या इनका परस्पर सम्बन्ध अथवा किसी शुभ भाव में स्थिति विवाह की द्योतक होगी। लेकिन साधुओं, संन्यासियों आदि के सन्दर्भ में सन्तान योगों की तरह विवाह योगों को भी निष्क्रिय ही समझना चाहिए।

एक विवाह व पत्नीनाश के योग :

केन्द्रस्था वा त्रिकोणे यदि खलु गृहिणीकारकाख्या नभोगाः
कामार्थेशौ निजर्क्षे परिणयनविधिः स्यात्तदानीं नुरेकः।
जायाधीशः कुटुम्बाधिपतिरपि युतश्चेत्त्रिके गर्हिताख्यै-
र्यावद्भिः शुक्रयुक्तो नितमिह भवेत् तावतीनां विरामः॥२४॥

स्त्री कारक ग्रहों की स्थिति यदि केन्द्र या त्रिकोणों में हो और सप्तमेश या द्वितीयेश अपनी राशि में स्थित हो तो मनुष्य का एक ही विवाह होता है।

द्वितीयेश और सप्तमेश यदि पाप ग्रहों से युक्त होकर ६, ७, ८ में शुक्र सहित हों तो उतनी ही स्त्रियों का नाश हो जाता है। अथवा ६, ८, १२ भावों में उक्त पाप ग्रह हों तो उतनी स्त्रियों का नाश हो जाता है।

स्त्री कारक ग्रहों से तात्पर्य है, सप्तम भावगत ग्रह, शुक्र, चन्द्रमा व चर कारकों में से सर्वाल्प अंश वाला ग्रह स्त्री कारक। यदि ये केन्द्र त्रिकोणों में कहीं हों अथवा त्रिकोण में बैठकर सप्तम या द्वितीय को देखते हों तो एक ही विवाह होता है। सम्वन्धित शुकसूत्र प्रस्तुत है—

(i) **कलत्रकारकेषु केन्द्रत्रिकोणस्थितेषु तदा कलत्राधिपः कुटुम्बाधिपो वा स्वराशौ चेदेक एव विवाहः।**

(ii) **तेषु त्रिकोणगतेषु कुटुम्बस्थानं वा पश्यत्सु तदेव फलम्।**

(शुकसूत्र)

स्त्री कारक ग्रह यदि शुक्र से युक्त एवं पाप ग्रहों (श०मं०रा०सू०) से आक्रान्त होकर त्रिक में हों, अर्थात् ६, ८, १२ में हों तो संख्या तुल्य स्त्री नाश करते हैं। श्लोक में स्पष्टतया 'त्रिक' शब्द का प्रयोग है, अतः उसका अर्थ ६, ८, १२ भाव है, लेकिन अग्रलिखित सूत्र में 'षडादिषु' शब्द का अर्थ होगा ६ से लेकर लगातार ३ भाव अर्थात् ६, ७, ८ भाव। हमारे विचार से दोनों ही बातें उपयुक्त हैं। सप्तम भाव में शुक्र पाप युक्त होकर बैठेगा तो भी सप्तम भाव व भावकारक दोनों ही निर्बल होकर विवाहित जीवन को विघ्नमय बनाएंगे।

अतः सप्तमेश, द्वितीयेश, शुक्र, चन्द्रमा आदि स्त्री कारक ग्रह अशुभ भावों में या सप्तम भाव में पाप ग्रहों से युक्त होकर बैठेंगे तो पत्नी के स्वास्थ्य को खूब हानि पहुंचाएंगे। इन योगों में पत्नी व दाम्पत्य जीवन दोनों को ही हानि पहुंचती है। प्रस्तुत कुण्डली पर विचार करें।
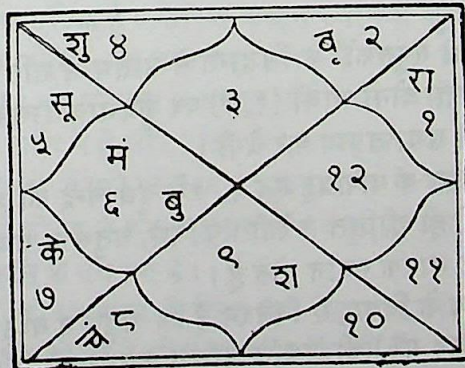
यहां सप्तमेश त्रिक में है। चतुर्थेश चन्द्र भी त्रिक में है। सप्तम में पाप ग्रह है। शुक्र ही कुटुम्व स्थान में पक्ष में है। अन्यथा सप्तम पर मंगल की पूर्ण दृष्टि भी है। इनका एक विवाह हुआ। एक पुत्र है। पति व पत्नी लगभग २० वर्षों से अलग रहते हैं। दोनों ने एक-दूसरे की सूरत भी तब से नहीं देखी है। अतः केवल कुटुम्वेश व सप्तमेश की अशुभ स्थिति ही भीषण फल दिखा रही है। जव तक ये साथ भी रहे तो एक दिन भी आपस में नहीं बनी थी।

गर्भाभाव के योग :

लग्नस्थे सप्तसप्तौ दिनमणितनये कामगेऽथार्कमन्दौ द्यूने,
चन्द्रे नभस्थे न च यदि गुरुणाऽऽलोकिते नो प्रसूते।
द्वेष्येशे मित्रमन्दौ द्विषि सितकिरणेऽस्ते बुधेनेक्षिते नो,
सूते द्वेष्ये जलर्क्षे यदि कुजरविजौ गर्भिणी स्यान्न नारी ।।२५।।

यदि लग्न में सूर्य हो और सप्तम में शनि हो तो ऐसी स्थिति में गर्भ धारण भी नहीं होता है।

यदि सूर्य व शनि सप्तम में एकत्र हों और दशम स्थान में चन्द्रमा गुरु की दृष्टि से रहित हो तो ऐसे पुरुष की स्त्री को कभी सन्तान नहीं होती।

षष्ठेश और सूर्य शनि षष्ठ भाव में हों और बुध से दृष्ट होकर चन्द्रमा सप्तम में हो तो भी उक्त फल होता है।

यदि षष्ठ व चतुर्थ स्थान में मंगल व शनि हों तो भी गर्भ धारण नहीं होता है।

'बुधसूर्यसुतौ नपुंसकौ' के सिद्धान्त से सप्तम में शनि की स्थिति व सूर्य की लग्नगतता दोनों भावों (१, ७) पर कुप्रभाव डालकर गर्भधारण की योग्यता को समाप्तप्राय कर देगी।

षष्ठ में षष्ठेश व पाप ग्रह एवं १, ७ में बुध चन्द्र की क्रमशः स्थिति भी पुत्राभाव को ही द्योतित करेगी। कारण, चतुर्थ व षष्ठ क्रमशः पुत्र भाव के हानि व मारक स्थान होते हैं।

अन्तिम योग के विषय में निवेदन है कि चतुर्थ व षष्ठ दोनों में एक साथ पाप ग्रह (श० मं०) की स्थिति अधिक कुप्रभाव देगी।

इस श्लोक से सम्बद्ध सूत्र अनुपलब्ध हैं। लेकिन उक्त योगों में सन्तान का अभाव सर्वत्र दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः विद्वानों को ऊहापोहपूर्वक पुत्र सुख का अभाव कहना चाहिए।

अष्टम भाव विचार

कठिन जीवन व आयु के योग :

रन्ध्रस्थानस्थिता वा स्थिरभवनगताः शुक्रवागीशसौम्याः,
कृच्छ्राणां कर्मणां ना भवति हि नियतं कारकः स्तब्धभावः।
बाल्ये दुःखी नरः स्यान्निधनगृहपतौ लाभयाते सुखी स्यात्-
पश्चात् पापेऽल्पमायुः शुभखगसहिते दीर्घमायुर्नराणाम् ॥२६॥

शुक्र, बुध और बृहस्पति यदि अष्टम स्थान में स्थित हों या ये स्थिर राशियों (२, ५, ८, ११) में हों तो मनुष्य कठिन एवं कष्टकर, कठोर कार्य करने वाला होता है। ऐसा व्यक्ति हृदय से कठोर अर्थात् भावुकता से न्यून होता है।

यदि वही अष्टमेश पाप ग्रह होकर एकादश में हो तो मनुष्य अल्पायु होता है। यदि अष्टमेश शुभ ग्रह से युक्त हो तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

शुभ ग्रह बुध, गुरु, शुक्र यदि तीनों या इनमें से दो भी स्थिर राशि में या अष्टम स्थान में स्थित हों तो मनुष्य के कार्य प्रायः सरलता से सिद्ध नहीं होते हैं। उसे कार्य सिद्धि के लिए प्रभूत परिश्रम करना पड़ता है। ऐसा अनुभव से सुसिद्ध है। लेकिन अष्टम स्थान में शुभ ग्रह आयु के लिए हितकारक होते हैं, यह बात यहां ध्यान में रखनी चाहिए।

पीछे श्लोक १६ की व्याख्या में प्रस्तुत कर्क लग्न वाली कुण्डली में शुक्र व गुरु स्थिर राशि में हैं और उनमें से एक ग्रह अष्टम में भी है। इन्होंने अपने जीवन में काफी परिश्रम व पुरुषार्थ करके मध्यम स्थिति अर्जित की है। इन्हें जीवन में कटु अनुभव पदे-पदे हुए हैं, अतः ये गम्भीर व कम भावुक प्रकृति के बन गए हैं।

ऐसे व्यक्तियों को सफलता के लिए खूब मेहनत करनी पड़ती है। यदि अन्य योग शुभ हों तो ये लोग सफलता पा लेते हैं, लेकिन इनका

जीवन में विरोध प्रायः होता रहता है। पूर्वोद्धृत प्रधानमन्त्री राजीव गांधी की कुण्डली में लग्न में सिंह राशि में बुध, गुरु, शुक्र हैं। ये लग्न में बैठकर शुभ हैं तथापि इन्हें कृच्छ्रकर्मा अर्थात् कठोर कार्य करने वाला, जैसे हवाई जहाज उड़ाना और उग्र विरोध का सामना करने वाला बनाते हैं। तथापि इनमें से कोई योगकर्ता ग्रह यदि अष्टम में हो तो जीवन में प्रायः सुख परिश्रम से ही उत्पन्न होता है और असन्तोष का म्लान बना रहता है।

इस श्लोक से सम्बन्धित एक सूत्र प्रस्तुत है—

(i) **बुधगुरुशुक्राः स्थिरराशिगा अष्टमस्थानगताश्चेत् कृच्छ्रकर्मा भवति।**

(शुकसूत्र)

अष्टमेश व लग्नेश से आयुर्योग :

कुर्यादायुर्गृहेशःखलखगयुगरिप्रान्त्यसंस्थोऽल्पमायु,
श्चेल्लग्नाधीशयुक्तो निधनभवनपः स्वल्पमायुः प्रदत्ते।
रन्ध्रस्थो वा चिरायुस्तदनु रविभवस्तत्र तद्वल्लयेशः कोश-
स्थानस्थितश्चेज्जनुषि हि मनुजो वैरियुक् तस्करः स्यात् ॥२७॥

यदि अष्टमेश पाप ग्रहों से युक्त होकर षष्ठ या द्वादश स्थानों में स्थित हो तो मनुष्य अल्पायु होता है।

इसी प्रकार लग्नेशयुक्त अष्टमेश, षष्ठ या द्वादश में हो तो भी मनुष्य अल्पायु होता है।

यदि अष्टमेश अष्टम में ही हो तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

यदि शनि अष्टम में हो तो भी मनुष्य दीर्घायु होता है।

यदि अष्टमेश द्वितीय स्थान में हो तो मनुष्य प्रायः विरोधियों से घिरा हुआ और तस्कर होता है।

६, १२ में अष्टमेश का जाना ही आयु के लिए हानिकारक है। तब यदि अष्टमेश पापयुक्त या लग्नेशयुक्त भी हो तो यह कुप्रभाव अधिक बढ़ जाएगा।

अष्टमेश चाहे शुभ हो या पाप, यदि अष्टम में होगा तो आयु वृद्धि ही करेगा।

इसी प्रकार शनि अष्टम भाव अर्थात् आयु का कारक है। यह एकमात्र अपवाद है कि कोई भावकारक अपने भाव में बैठकर उस भाव की वृद्धि करता है। अतः अष्टम में शनि आयुष्यवर्धक माना जाता है।

अष्टमेश यदि द्वितीय में हो तो ग्रन्थकार के कथनानुसार व्यक्ति के विरोधियों की संख्या बहुत होती है और वह स्वभाव से या कर्म से तस्कर होता है। पं० नेहरू की जन्म कुण्डली में अष्टमेश शनि द्वितीय स्थान में है। लेकिन इस योग का फल वहां घटित होता नहीं दीखता। हां, उनके विरोधी खूब रहे हों, ऐसी बात भी बहुत उत्कट नहीं थी। अस्तु, हमारे विचार से केवल इसी योग से किसी को बेईमान बना देना युक्तियुक्त नहीं है। इस श्लोक से सम्बन्धित सूत्र प्रस्तुत हैं—

(i) **अथाष्टमस्य।**
(ii) **आयुः स्थानाधिपः सपापः षष्ठव्यये स्थितश्चेद् अल्पायुर्भवति।**
(iii) **तत्र देहाधिपयोगेऽल्पतरायुर्भवति।**
(iv) **शनिनाप्यायुश्चिन्ता।**
(v) **अष्टमस्थितश्चेद् दीर्घायुर्भवति।**

(शुकसूत्र)

'वैरियुक्तस्करः स्यात्' वाले योग से सम्बन्धित सूत्र उपलब्ध नहीं है। कदाचित् गणेश कवि ने इसे अपनी कल्पना से लिखा है। इसके पीछे तर्क रहा होगा कि अष्टम स्थान धन को छिपाने, गबन करने, चोरी करने या छीनने का है और द्वितीय स्थान है खो जाने का। अतः ऐसे योग वाला व्यक्ति यदि धन व्यवहार करेगा तो कुछ लोग उसकी कार्य शैली पर अंगुली उठा सकते हैं। अष्टमेश द्वितीय में जाकर द्वितीय (धन) को हानि करेगा और अष्टम को अपनी पूर्ण दृष्टि से बढ़ोत्तरी देगा। अतः पाठक इस नियम की कुण्डलियों में परीक्षा करके ही निष्कर्ष पर पहुंचें।

युद्ध में जय-पराजय व मृत्यु के योग :

आयुर्देहाधिनाथौ निधनरिपुगतौ हीनवीर्यौ प्रसूतौ,
संग्रामे कीर्तिशेषंव्रजतिबलयुतौतौतदातज्जयाप्तिम्।

शुक्रेणान्दोलिकायास्तनुपविधुयुतो वाहनस्थाननाथो,
मूर्तौ दंतावलेन्द्रैरथ गुरुसहितः स्याज्जयो वाजिवाहैः ॥२८॥

जन्म समय यदि लग्नेश और अष्टमेश हीन बली होकर ६, ८ भावों में स्थित हों तो मनुष्य की मृत्यु युद्ध में होती है।

यदि ये ही लग्नेश व अष्टमेश बलवान् होकर अष्टम में स्थित हों तो मनुष्य विजयी होता है।

यदि चतुर्थेश शुक्र से युक्त होकर लग्न में हो तो मनुष्य पालकी आदि में बैठकर विजय प्राप्त करता है।

यदि लग्नेश, चतुर्थेश व चन्द्रमा लग्न में हों या लग्न से दृष्टि आदि सम्बन्ध रखते हों तो मनुष्य को हाथियों की सहायता से विजय प्राप्त होती है।

यदि चतुर्थेश, लग्नेश, गुरु युक्त होकर लग्न से सम्बन्ध करते हों तो मनुष्य घोड़ों की सहायता से विजय प्राप्त करता है।

यहां युद्ध से तात्पर्य सामान्य कलह, विवादादि भी हो सकता है। आजकल युद्ध में पालकी, हाथी, घोड़ों का प्रयोग नहीं होता है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लग्नेश व अष्टमेश यदि निर्बल होकर अष्टम में हों तो मनुष्य की अस्वाभाविक मृत्यु होती है। यदि ये बली हों तो वाहनादि की सहायता से विजय दिलाते हैं। इस श्लोक के सूत्र इस प्रकार हैं—

(i) **आयुर्देहाधिपौ षष्ठाष्टमगतौ बलहीनौ चेद् युद्धे मृतिः।**
(ii) **बलयुक्तौ चेद् युद्धे जयः।**
(iii) **चोर युद्धो वा।**
(iv) **वाहनपश्चन्द्रेण देहपेन देहसम्बन्धी चेदश्वादिसिद्धिः।**
(v) **शुक्रेणान्दोलिकासिद्धिः।**
(vi) **बृहस्पतिना तुरगसिद्धि,।**
(vii) **एतैः सर्वैः सदेहपैः देहसम्बन्धगश्चेद्गजादिवाहनानां सिद्धिः।**

सूत्र (iii) का विषय श्लोक में समाहित नहीं हुआ है। सूत्रानुसार अर्थ है कि लग्नेश अष्टमेश वलवान् हों तो युद्ध में जय या चोर युद्ध अर्थात् गुरिल्ला युद्ध होता है। हमारी अल्प बुद्धि से चोर युद्ध और विजय का कुछ मेल नहीं दिखता है। कदाचित् 'घोर युद्ध' लिपिभ्रम से **'चोर युद्ध'** बन गया है, अस्तु इस विषय में पाठक ही प्रमाण हैं।

नवम भाव विचार

भाग्य योग :

भाग्येशो मूर्तिवर्ती सुरपतिगुरुणालोकितो भूपवन्द्यो,
लग्नस्थो वाहनेशो नवमपतिरुभौ पश्यतश्चेत्स्वगेहम् ।
सर्वासामास्पदं स्यान्मनुज इह तदा सम्पदां वाहनेशो,
रन्ध्रस्थानस्थितश्चेद्व्रजति हि मनुजो भाग्यराहित्यमेवम् ॥२६॥

यदि नवमेश लग्न में स्थित हो और उसे बृहस्पति देखता हो तो मनुष्य राजपूज्य सम्मानित होता है।

यदि चतुर्थेश व नवमेश लग्न में हों और अपने-अपने भावों को देखते हों तो मनुष्य सभी सम्पत्तियों का स्वामी होता है।

यदि चतुर्थेश अष्टम स्थान में हो तो मनुष्य का भाग्य सिद्ध नहीं होता।

पाराशरीय ज्योतिष का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि केन्द्र व त्रिकोणों का परस्पर सम्बन्ध सदैव सम्पत्ति व भाग्य देते हैं। लग्न को यह विशेषता प्राप्त है कि वह एक साथ केन्द्र व त्रिकोण है। अतः लग्न परम शुभ भाव है और नवमेश सभी त्रिकोणों में परम बली त्रिकोण है। अतः भाग्य, धर्म, शुभ व तप भाव का स्वामी नवमेश यदि लग्न में बैठेगा तो वह अवश्य ही मनुष्य को भाग्यवान् बनाता है। लेकिन यहां एक बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि नवमेश यदि अष्टमेश भी हुआ तो वह शुभ फलदायक न रहेगा अथवा उतना उत्कट शुभ फल नहीं दे पाएगा। जैसे मिथुन लग्न में शनि ८, ९ भावों का स्वामी होगा। इसी प्रकार ६, ८, ११, १२ भावों का स्वामी ही यदि नवमेश भी होगा तो उसकी शुभता में कमी आ जाएगी। यदि ऐसे नवमेश या केन्द्रेश के साथ किसी अन्य बली शुभ ग्रह या त्रिकोणेशादि का भी सम्बन्ध होगा तो शुभ फल हो जाएगा। कहा गया है—

धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि ।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ॥

(लघुपाराशरी)

इस समस्त विषय का विस्तृत विवेचन हम अपनी **लघुपाराशरी विद्याधरी** में कर चुके हैं। पाठकों को लघुपाराशरी का अध्ययन अवश्यमेव करना चाहिए।

अव श्लोकोक्त दूसरे योग को लें। ग्रन्थकार कहते हैं कि नवमेश व चतुर्थेश दोनों लग्न में हों तो मनुष्य सर्वसम्पत्तिनिधान होता है, यदि वे दोनों स्व-स्व-भावों को देखते हों। ठीक है, नवमेश व चतुर्थेश की लग्न में युति तो श्रेष्ठ फल देगी ही, लेकिन वे दोनों स्व स्थान को देखते हों, यह तभी सम्भव हो सकेगा जब नवमेश व चतुर्थेश क्रमशः बृहस्पति व मंगल हों। जो सम्भव ही नहीं है। प्राचीन टीकाकारों ने भी इस विसंगति को प्रकट नहीं किया है। इस समस्या का समाधान शुकसूत्र करता है—

(i) **लग्नधनवाहनाधिपा आत्मस्थाने धर्माधिपे लग्नगते लग्नं वा पश्यति वाहनादिसिहासनस्य योगः।**

(ii) **वाहनपे अष्टमस्थानस्थिते भाग्यं न सिद्ध्यति।**

(iii) **तदा रासभादिवाहनसिद्धिः।**

(iv) **वाहन चापलतासिद्धिः।**

(शुकसूत्र)

सूत्र (i) का अर्थ इस प्रकार है—लग्नेश, द्वितीयेश व चतुर्थेश अपने-अपने स्थानों में हों अर्थात् लग्न में लग्नेश, द्वितीय में द्वितीयेश और चतुर्थ में चतुर्थेश हो और साथ में नवमेश लग्न में हो या वह पूर्ण दृष्टि से लग्न को देखता हो तो वाहन व राजसिंहासन योग बनता है। पता नहीं, क्यों गणेश कवि ने लग्नेश व नवमेश की अपने-अपने भाव पर दृष्टि भी योग बनाने के लिए आवश्यक मान ली है। सूत्र में कोई विरोध नहीं है और श्लोक में विरोध स्पष्ट है। इस सूत्र योग को अगले श्लोक में यथावत् ग्रहण किया है और यह प्रस्तुत योग कवि की निजी कल्पना है जो असंगत है। इस सन्दर्भ में यह भी समझ लेना चाहिए कि धनेश, चतुर्थेश, लग्नेश, चतुर्थेश का परस्पर क्षेत्र सम्बन्ध हो या लग्नेश, चतुर्थेश, धनेश, नवमेश सभी या एकाध कम ग्रह भी लग्न में हो और भाग्य या चतुर्थ को पूर्ण दृष्टि से देखते हों तो भी श्रेष्ठ फल अवश्य देते हैं। यह बात पाराशरीय नियमों से सिद्ध है। सूत्र (ii) का अर्थ श्लोकोक्त प्रकार से ही है।

चतुर्थेश अष्टम में हो तो परिश्रम व पुरुषार्थ का फल पूरा नहीं मिल पाता। ऐसा व्यक्ति सम्पत्ति से लाभ नहीं कमा पाता और अलोकप्रिय होता है। यह अनुभूत तथ्य है। ऐसे व्यक्ति को घटिया व अस्थायी वाहन भी मिलते हैं। (देखें सूत्र ३-४)

राजपूज्य व राज्यलाभ योग :

हीनानां वाहनानां तदनु चपलता प्राप्तिरेवं नराणां,
ज्ञेया होरागमज्ञैरथ नवमपतौ लाभगे राजवन्द्यः।
दीर्घायुर्धर्मशीलस्तदनु धनवपुर्वाहनेशाः स्वगेहे,
धर्मेशो लग्नवर्ती जनुषि यदि गजस्वामिसिंहासनानाम् ॥३०॥

यदि चतुर्थेश अष्टम में हो तो ऐसे व्यक्ति को घटिया वाहनों की प्राप्ति होती है और मस्तिष्क में चंचलता बनी रहती है।

यदि नवमेश एकादश स्थान में स्थित हो तो भी मनुष्य राजाओं द्वारा परिपूजित होता है। साथ ही ऐसा व्यक्ति दीर्घायु व धार्मिक होता है।

यदि १, २, ४ भावों के स्वामी स्वक्षेत्र में हों और नवमेश लग्न में गया हो तो मनुष्य हाथी घोड़े आदि वाहनों व सिंहासन पर आधिपत्य रखता है।

चतुर्थेश की अष्टम स्थिति का सम्बन्ध पिछले श्लोक से है। अतः सम्मिलित रूप से फल यह हुआ कि अष्टमगत चतुर्थेश मनष्य को भाग्यहीन, चंचल मस्तिष्क एवं घटिया वाहनप्रद होता है। हमारे विचार से ऐसे व्यक्ति को सफलता के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। भाग्य कुछ कम साथ देता है।

नवमेश यदि एकादश में हो तो व्यक्ति दीर्घायु, धार्मिक व राजमान्य होता है, ऐसा कहा गया है। एकादश उपचय अर्थात् वृद्धि स्थानों में परम बली और सर्वलाभ का स्थान है। अतः नवमेश यदि एकादश में में होगा तो भाग्य व सम्मान मिलेगा। इस स्थिति में वह पंचम को भी पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

धनेश, चतुर्थेश व लग्नेश का उक्त तृतीय योग पिछले श्लोक में ही विवेचित किया जा चुका है। केवल इतना कहना हम आवश्यक समझते

हैं कि नवमेश अपना उत्कृष्ट फल तभी देगा जब वह अशुभ भावों का स्वामी न हो। साथ-साथ अष्टमेश व नवमेश होना बहुत खराब है। षष्ठेश, द्वादशेश व नवमेश होना मध्यम माना जाएगा। यही कारण है कि कर्क लग्न वालों को बृहस्पति अपनी शक्ति से अकेला प्रायः योग कारक नहीं होता है।

कई भाग्यवान् योग पड़ने पर भी मनुष्य का सामाजिक स्तर व कार्य क्षेत्र भी इस विषय में मस्तिष्क में रखना चाहिए। उदाहरणार्थ स्वामी करपात्री जी की इस कुण्डली को देखिए—
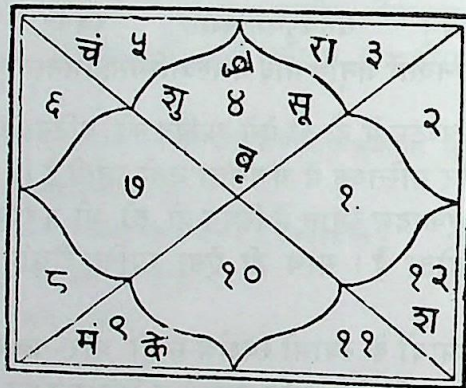
इसमें चतुर्थेश शुक्र, द्वितीयेश सूर्य, भाग्येश गुरु लग्न में हैं। नवमेश नवम को देखता है। अतः योग घटित होता है; लेकिन इन्हें राजनीतिक सत्ता प्राप्ति योग बताना विडम्बना ही होता। तथापि ये पूज्यपाद, विश्वप्रसिद्ध, विद्वान् एवं धार्मिक थे, इसमें सन्देह नहीं है।

राज्यभाग्यादि प्राप्ति का समय :

योगानां स्यादमीषां प्रचुरबलयुतो योऽधिपस्तद्दशायां,
लब्धिश्चान्तर्दशायामथ गुरुभृगुजौ वाहनाधीशयुक्तौ।
केन्द्रेयाने त्रिकोणे त्वथ गुरुकवियुग्वाहनस्थानगो वा
भाग्याधीशः स्वराशौ भवति नरपतिर्वाहनव्यूहनाथः ॥३१॥

सभी योगकारक ग्रहों में से जो सबसे अधिक बलवान् ग्रह होगा, उसी ग्रह की दशा या अन्तर्दशा में उक्त फल मिलेगा।

यदि गुरु व शुक्र, चतुर्थेश से युक्त होकर केन्द्र में हों या ये तीनों चतुर्थ स्थान में हों या ये तीनों त्रिकोण स्थानों में हों अथवा भाग्येश व गुरु, शुक्र ये तीनों चतुर्थ नवम में हों तो मनुष्य बहुत से वाहनों का स्वामी होता है।

फल परिपाक के विषय में पाराशरीय नियम भी यही है कि योगकारक ग्रह की दशा व अन्तर्दशा में योग का फल मिलता है। अतः किसी योगकारक ग्रह की या किसी शुभ ग्रह की महादशा में महादशेश की अन्तर्दशा को छोड़कर शेष शुभ, योगकारक बली ग्रहों की जब-जब अन्तर्दशा आएगी, तब-तब उक्त योगों का फल मिलेगा।

महादशेश की अन्तर्दशा प्रायः अपना फल देने में हीन बल होती है। जैसे गुरु यदि योगकारक हो तो गुरु में गुरु की अन्तर्दशा के समय योग का फल नहीं मिलेगा; अपितु गुरु में अन्य योगकर्ता ग्रहों की अन्तर्दशा आने पर ही शुभ फल होगा। इस विषय की विस्तृत व्याख्या हम अपनी **लघुपाराशरी विद्याधरी** पृ० १११ से १४२ तक कर चुके हैं। अतः पाठकों को उक्त पुस्तक का अध्ययन लाभप्रद रहेगा।

अब श्लोकोक्त अन्य योगों की गवेषणा करते हैं। गुरु, शुक्र व चतुर्थेश यदि चतुर्थ स्थान में हों या कहीं भी केन्द्र में बैठकर वाहनस्थान को देखते हों तो विशेष फलदायक होंगे। सूत्रकार ने भी ऐसा ही कहा है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गुरु, शुक्र व चतुर्थेश चतुर्थ में हों तो श्रेष्ठ योग, केन्द्र में कहीं अन्यत्र हों तो मध्यम योग और त्रिकोण में हों तो भी मध्यम योग बनेगा। जैसा कि उपलब्ध संस्करणों के श्लोक में एकादश स्थान का ग्रहण किया है, वह सूत्रों में गृहीत नहीं है। एकादश स्थान उपचय स्थान होने के कारण एवं श्रेष्ठ प्राप्ति स्थान होने से सम्भवतः ग्रहण किया गया है। 'अयान' शब्द का अर्थ टीकाकारों ने एकादश भाव ही लिया है। यान शब्द का अर्थ संस्कृत में जाना या चलना होता है। इसका विपरीतार्थक शब्द बनाने के लिए नञ् प्रयोग से 'अयान' अर्थात् न जाना अर्थात् आना, आगम, प्राप्ति आदि अर्थ देकर दूर की कौड़ी खेली गई लगती है। अथवा श्लोककार की यह निर्बलता ही है कि 'लाभ' शब्द को छोड़कर ऐसा अटपटा शब्द लिया है। **'केन्द्रेऽयाने'** के स्थान पर **'केन्द्रेलाभे'** कहना बिल्कुल स्पष्ट होता और छन्दोभंग भी नहीं था। तब ऐसा प्रयोग हमारे विचार से

लिपिकारों का भ्रम ही है। ग्रन्थकार ने स्पष्टतया **केन्द्रे** अर्थात् केन्द्र में, **याने** अर्थात् वाहन स्थान चतुर्थ में, ऐसा ही लिखा होगा। हमारे इस सन्देह की पुष्टि इस बात से भी होती है कि श्लोक में चतुर्थ भाव का वाचक कोई शब्द भी प्रयुक्त नहीं है तथा सूत्र में स्पष्टतया चतुर्थ में या केन्द्र त्रिकोण में, ऐसा कहा गया है। अतः हमने सूत्रानुसारी अर्थ ही लिया है। इस शब्द की व्याख्या में जातकालंकार के पुराने टीकाकारों ने सूत्रों की अनुपलब्धता के कारण ही भ्रमपरक अर्थ कर दिया था।

दूसरा योग इस प्रकार है—गुरु, शुक्र व भाग्येश, ये तीनों नवम स्थान में हों तो श्रेष्ठ भाग्यवाहन योग बनेगा। यह योग सूत्रसमर्थित है। श्लोक में स्पष्ट कहा गया है कि भाग्याधीश गुरु शुक्र से युत होकर वाहन स्थान में हो, अतः चतुर्थ ग्रहण में कोई भ्रम नहीं है। कोई भी ग्रह चतुर्थेश व नवमेश साथ-साथ नहीं हो सकता, केवल शुक्र ही इस स्थिति में भावद्वयेश सम्भव है। लेकिन उसका तो स्पष्ट ग्रहण हो चुका है। अतः सूत्र न होने पर भी हम श्लोकोक्त अर्थ को स्वीकार करते हैं। निष्कर्ष यह है कि गुरु, शुक्र व नवमेश ४, ९ भावों में एकत्र हों तो भाग्यवाहन योग होता है।

श्लोक ३०-३१ से सम्बन्धित सूत्रों का उपलब्ध पाठ प्रस्तुत है—

(i) **लग्नधनवाहिनाधिपा आत्मस्थाने, धर्माधिपे, लग्नगते, लग्नं पश्यति वा वाहनादि सिंहासनस्थ योगः।**

(ii) **अथ कालं ब्रूमः।**

(iii) **एतेषां योगानां योगाधिपदशान्तर्दशासु तत्प्राप्तिर्वाच्या।**

(iv) **वाहने वाहनाधिपगुरुशुक्राः केन्द्रत्रिकोणे स्थिता वा।**

(v) **सभाग्याधिपौ गुरुशुक्रौ भाग्यस्थाने वा।**

(शुकसूत्र)

अर्थात् योगफल की प्राप्ति का समय बताते हैं। योगकारकों की दशान्तर्दशा में योग की प्राप्ति कहनी चाहिए। चतुर्थेश, गुरु, शुक्र चतुर्थ में, केन्द्र में या त्रिकोण में हों तो वाहनभाग्य योग होता है। गुरु, शुक्र व भाग्येश नवम में हों तो भी उक्त फल होता है। सूत्र सं० (i) का सम्बन्ध पिछले श्लोक से है।

दशम भाव विचार

चिन्तायोग विचार :

कर्मस्थे क्षेत्रचिन्ता त्रिकभवनगते सौख्यचिन्ता महीजे,
वागीशे यानभूषावसनहयभवा चामरच्छत्रचिन्ता।
प्रालेयांशौ सिते स्यादथ मदनगते वाक्पतौ पुत्रचिन्ता,
संतानस्थानयाते हिमकरतनये बुद्धिजाऽथ त्रिकोणे ॥३२॥
मार्तण्डे तातबंधोरथ सुतनवमद्यूनगे दानवेज्ये,
यात्राचिन्ता नराणामथ नवमसुते पुत्रजा वासवेज्ये।

दशम स्थान में मंगल होने पर मनुष्य को जीवन क्षेत्र चिन्ता रहती है। मंगल यदि त्रिक भावों में हो तो सुख की चिन्ता होती है। यदि बृहस्पति त्रिक स्थानों में हो तो वाहन, आभूषण, वस्त्रादि की चिन्ता बनी रहती है।

चन्द्र या शुक्र के त्रिकगत होने पर छत्र, चंवर अर्थात् राजयोग की चिन्ता रहती है। सप्तमस्थ गुरु से पुत्र प्राप्ति की चिन्ता होती है।

पंचम स्थान में बुध होने पर बुद्धि सम्बन्धी चिन्ता होती है।

त्रिकोण में सूर्य होने पर पिता व भाइयों की चिन्ता लगी रहती है। यदि शुक्र ५, ७, ९ भावों में हो तो यात्रा की चिन्ता और गुरु की ५, ९ में स्थिति होने से पुत्र सम्बन्धी चिन्ता होती है।

इस विषय में कुछ भी कहने से पहले सूत्रों का अविकल पाठ प्रस्तुत है—

(i) **अनेन स्थानेन दशमेन भौमेन च क्षेत्रचिन्ता सुखचिन्ता च।**
(ii) **बृहस्पतिना वाहन वस्त्राभरणचिन्ता।**
(iii) **शुक्रेण छत्रचामरचिन्ता।**
(iv) **चन्द्रेण च पंचमेन सप्तमेन, नवमेन स्थानेन बृहस्पतिना पुत्रचिन्ता।**
(v) **पंचमेन बुधेन बुद्धिचिन्ता।** (पूर्वोद्धृत)
(vi) **पंचमनवमाभ्यां रविणा पुत्रचिन्ता।**
(vii) **पंचमसप्तमनवमस्थानेन शुक्रेण यात्राचिन्ता।**

(शुकसूत्र)

सूत्र (i) पीछे चतुर्थ स्थान के प्रसंग में आ चुका है। यहां इन सभी सूत्रों का अर्थ स्वतन्त्र रूप से कारकत्व के सम्बन्ध में भी लग सकता है। जैसे चतुर्थ स्थान (अनेन) दशम व मंगल से क्षेत्र व सुख की चिन्ता अर्थात् विचार करना चाहिए। गुरु से वाहन वस्त्राभरणादि का विचार करना चाहिए। इत्यादि।

लेकिन प्रस्तुत श्लोक ३२ में श्लोककार ने स्पष्टतया इनका सम्बन्ध भाव विशेष से मानकर अर्थ लिया है। अतः पाठकों को इसकी सत्यता की परीक्षा करनी चाहिए। कुछ बातें श्लोक में अधिक भी बताई गई हैं।

हमारे विचार से जातकालंकार के ये योग काफी हद तक युक्ति-युक्त हैं।

गणेश कवि ने इन्हें अपने व्यवहार में अच्छा पाया होगा, अतः इस प्रकार का अर्थ भी ले लिया है।

अतः दशमस्थ मंगल भूमि सम्बन्धी चिन्ता उत्पन्न करता है। चिन्ता से तात्पर्य है, किसी वस्तु के लाभालाभ, शुभाशुभ, प्रतिकूलता-अनुकूलतादि के विषय में विचार करना। अतः ऐसा व्यक्ति भूमि सम्बन्धी कार्यों में व्याप्त हो सकता है!

इस श्लोक में त्रिक भावों का ग्रहण पीछे कहे गए चतुर्थ भाव से सम्बन्धित सूत्र से किया गया है। अतः ६, ८, १२ भावों में गुरु हो तो मनुष्य वाहन, वस्त्र आभरण आदि अर्थात् भौतिक सुखों की प्राप्ति के विषय में अधिक परिश्रमी व प्रयत्नशील हो सकता है। शुक्र यदि त्रिक में हो तो मनुष्य को छत्र की चिन्ता होती है। अर्थात् मनुष्य राज्याधिकार, सत्ता, पदवी आदि पाने के लिए चिन्तित रहता है। इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिए। यदि चिन्ता योगों के होते हुए अन्य शुभ योग या राज योग पड़े हों तो उन वस्तुओं की प्राप्ति होने पर स्थिरता सम्बन्धी चिन्ता बनी रहेगी। उदाहरणार्थ पंचम या नवम में वृहस्पति हो और साथ ही अन्य सन्तान योग प्रबल पड़े हों तो मनुष्य को सन्तान कष्टपूर्वक, प्रयत्नपूर्वक, विलम्ब से प्राप्त हो सकेगी अथवा प्राप्त होने पर भी किसी कारण चिन्ता के विषय बने रहेंगे। लेकिन सन्तान प्राप्ति के योग नहीं होंगे और गुरु उक्त प्रकार से स्थिर होगा तो उक्त विषय की चिन्ता ही बनी रहेगी और सन्तान नहीं होगी, ऐसी

सरणि का पालन इस स्थान पर किया जा सकता है। वैसे विद्वान् पाठक स्वयं प्रमाण हैं।

दशमेश की स्थिति व असफलता :

कर्माधीशो विवीर्यो यदि जनुषि तदा सर्वकर्मास्पदं नो
गेहे स्वीये यदाऽसौ शुभविहगयुतो मानवो मानशीलः ॥३३॥

यदि जन्म कुण्डली में दशम स्थान का स्वामी निर्बल हो तो मनुष्य को अपने जीवन में किसी भी कार्य में अच्छी सफलता नहीं मिलती है।

यदि उक्त दशमेश स्वक्षेत्र में, किसी शुभग्रह से युक्त होकर स्थित हो तो मनुष्य माननीय होता है।

दशम स्थान से कर्म, पदवी, आज्ञा, मान-सम्मान, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि का विचार किया जाता है। **'यो यो भावः स्वामीदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात् तस्य तस्यास्तिवृद्धिः'** के सिद्धान्त से दशम भाव या दशमेश निसर्गबली या षड्बल से बली या शुभ ग्रहों से युक्त दृष्ट होगा तो दशम स्थान की वृद्धि होगी, यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है।

इसके विपरीत यदि दशमेश हीन बली या क्रूर ग्रहों से युक्त हो तो वह उक्त भाव की हानि ही करेगा। सभी केन्द्र स्थानों में दशम स्थान सर्वाधिक बली है। त्रिकोणों में भी इसी प्रकार १, ५, ९ में उत्तरोत्तर बलवत्ता होती है। इसी कारण से पाराशरी सिद्धान्तों में **'धर्मकर्माधिनेतारौ'** कहकर इनके स्थान सम्बन्ध को उत्तम राजयोग का सर्जक माना गया है। सूर्य व मंगल दशम स्थान में दिग्बली भी होते हैं। यदि कर्क लग्न में दशम में सूर्य व मंगल साथ हों तो भी उत्तम योग बनाते हैं। अतः दशम भाव उक्त पाप ग्रहों से युक्त होकर भी शुभ फल देने वाला ही होगा, इस बात का ध्यान रखना चाहिए। दशमेश यदि लग्न में गया हो और लग्नेश दशम या लग्न में हो तो उत्तम राजयोग बनता है। दशम स्थान के कारकत्व के विषय में सूत्रकार का कथन है—

(i) **एवं दशमेन कर्मचिन्ता वस्त्राभरणचिन्ता च।**

(ii) **कर्माधिपो बलहीनो यत्र तत्र कर्म वैबल्यं भवति।**

(शुकसूत्र)

यदि दशमेश दशम में ही स्वक्षेत्री हो तो श्रेष्ठ सिद्धि के योग बनेंगे। लेकिन दशमेश कहीं अन्यत्र केन्द्र या त्रिकोण में स्वक्षेत्री हो तो भी मध्यम फल अवश्य मिलेगा।

उदाहरणार्थ कर्क लग्न में मंगल दशमस्थ हो तो श्रेष्ठ और पंचम में हो तो मध्यम माना जाएगा। सामान्यतः दशमेश का किसी भी त्रिकोणेश से केन्द्र या त्रिकोण में सम्बन्ध अच्छा फल देने वाला होगा। कुछ सूत्र इस प्रकार होंगे—

(i) दशमेश नवमेश सम्बन्ध—श्रेष्ठ फल।
(ii) दशमेश लग्नेश सम्बन्ध—श्रेष्ठ फल।
(iii) दशमेश पंचमेश सम्बन्ध—मध्यम फल।
(iv) दशमेश केन्द्रेश सम्बन्ध—मध्यम फल।
(v) दशमेश द्विर्द्वादशेश सम्बन्ध—मध्यम फल।
(vi) दशमेश दुःस्थानेश सम्बन्ध—अधम फल।

योगकारक ग्रह की दूसरी राशि ६, ८, १२ में हो या ६, ८, १२ भावों के स्वामी योगकारक के साथ हों तो शुभ फल में आनुपातिक ह्रास अवश्यंभावी है। इसी सरणि से विचार कर फलादेश कहना चाहिए। उदाहरण के लिए प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी की धर्मपत्नी श्रीमती सोनिया गांधी की जन्म कुण्डली देखिए—
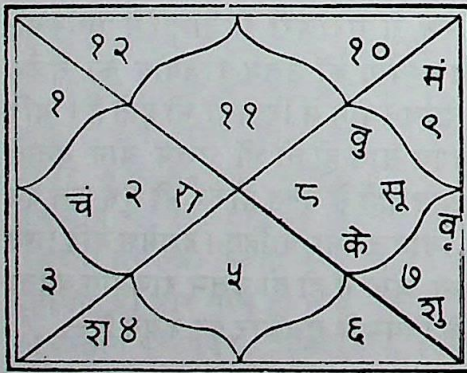
श्रीमती सोनिया गांधी
१ दिसम्बर १९४६

सप्तमेश सूर्य दशम में दिग्बली होकर पंचमेश से युक्त है। मंगल **चलित गति से दशम में ही आता है।** अतः दशम में ही माना जाएगा।

नवमेश चतुर्थेश में भी केन्द्र त्रिकोण सम्बन्ध वनता है। लेकिन बुध अष्टमेश भी है जो फल का ह्रास करता है। षष्ठेश भी चतुर्थ में है जो चतुर्थ को कमजोर करता है। अतः अच्छा राज योग होते हुए भी चतुर्थ व दशम पर पाप प्रभाव यश व लोकप्रियता में कमी प्रदर्शित करता है। इनके पति श्री गांधी के जन्म लग्न से इनका जन्म लग्न समसप्तक योग भी बनाता है, अतः इनकी विशेष सफलता संदिग्ध हो जाती है। अतः राजयोग उत्तम श्रेणी से कम वलवान् रह जाता है। शनि की ढैया विशेषतया मानसिक सन्ताप के कारणों को उत्पन्न करती है। उक्त ढैया इस समय (१९८६) पति पत्नी दोनों को साथ-साथ चल रही है।

ग्रह स्थिति से आयु विचार :

लाभे केन्द्रे त्रिकोणे तनुनिधनभवस्थानपाः संस्थिताश्चे-
द्दीर्घायुः पापखेटाः पणफरहिबुकत्रिस्थिता मध्यमायुः।
हीनायुः प्रोक्तमेते यदि जनुषि नृणां स्युस्तदाऽऽपोक्लिमस्था
रन्ध्रस्थानस्थितानां तनुपतिगगनस्वामिसूर्यात्मजानाम् ॥३४॥

जन्म समय यदि लग्नेश, अष्टमेश व दशमेश केन्द्र, त्रिकोण व लाभ स्थान में स्थित हो तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

यदि तृतीय, चतुर्थ एवं पणफर (२,५,८,११) स्थानों में पापग्रह हों तो मनुष्य मध्यायु होता है।

यदि आपोक्लिम (३,६,९,१२) स्थानों में पाप ग्रहों की स्थिति हो तो मनुष्य अल्पायु होता है।

लग्नेश, दशमेश व शनि में से जो अष्टम स्थान में हो और इन तीनों में से हीन बली हो, उसी की दशा तक आयु समझनी चाहिए।

आयुनिर्णय में दशम स्थान भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। दशमेश से आयु का विचार फलित ग्रन्थों में प्रसिद्ध ही है। सूत्रकार स्वयं कहते हैं—

(i) **एवं कर्माधिपेनाप्यायुश्चिन्ता।**

(ii) **अष्टमे देहाधिपकर्माधिपशनैश्चराणां यो बलहीनस्तद् दशायुश्चिन्त्यम् ॥** **(शुकसूत्र)**

अर्थात् दशमेश से भी आयु का विचार करना चाहिए। लग्नेश दशमेश व शनि इनमें से जो भी ग्रह अष्टम में निर्वल हो उसी की दशा तक आयु होती है।

दशमेश से आयुर्निर्णय के सम्बन्ध में पं० मुकुन्द दैवज्ञ ने लिखा है—

एवं खपेनार्कभुवा च चिन्तयेद्।
आयुर्य एषामधिकोर्ज्जवांस्ततः॥

(आयुर्निर्णय, अभिनवभाष्य, अधि २, श्लोक ५)

आपोक्लिम स्थानों में पापग्रहों की स्थिति मनुष्य को अल्पायु बनाती है। पणफर स्थानों में पाप ग्रह मध्यमायु देते हैं—

आपोक्लिमेऽघखचरैरुत सोग्ररन्ध्रः···।

(आयुर्निर्णय, वही, श्लोक ६)

पापैः फलार्थमृति मत्यमृतानुजस्थैर्वेन्दोरघैर्निधनगैर्दिवसेऽथकेन्द्रे।

(वही, श्लोक ३५)

'आपोक्लिम स्थानों में पाप ग्रह हों तो अल्पायु होती है।'

'यदि पाप ग्रह २,३,४,५,८,११ स्थानों में हों तो मध्यायु होती है।'

विशेष व्याख्या हेतु एवं आयु सम्वन्धी प्रत्येक प्रश्न का सटीक उत्तर जानने के लिए पाठकों को **आयुर्निर्णय, मत्कृत अभिनव भाष्य** का सम्वद्ध प्रकरण देखना चाहिए।

कष्टप्रद एवं मारक दशा का ज्ञान :

यो हीनस्तद्दशायुस्त्वथ निजभवने धर्मकर्मात्मजेशा-
श्चेत्स्युस्तेषांदशायांबहुलबलवशाद्धर्मबुद्धिर्नराणाम् ।
हानिः स्यादन्यथाऽरौ तनुनिधनपती भानुपुत्रेण युक्तौ,
स्यातां स्वर्भानुना चेत्तदनु च शिखिना तद्दशायां व्रणाः स्युः ॥३५॥

लग्नेश, अष्टमेश व दशमेश में जो निर्बल होकर अष्टम स्थान में स्थित हो तो उसी ग्रह की दशापर्यन्त आयु होती है। पंचमेश, नवमेश व दशमेश में से जो ग्रह अधिक वली होकर अपने भाव में स्वक्षेत्री हो तो उस ग्रह की दशा में मनुष्य की वृद्धि में धर्म भावना (श्रेष्ठ विचार, सन्मति व सत्त्वगुण) की वृद्धि होती है।

यदि उक्त ग्रह, ५,९,१० भावों के स्वामी अन्यत्र हों तो मनुष्यों को धर्महानि अर्थात् पापबुद्धि का उदय होता है।

यदि लग्नेश व अष्टमेश ये दोनों शनि या राहु या केतु से युक्त हों तथा षष्ठ स्थान में स्थित हों तो इनकी दशा में मनुष्य के शरीर में शस्त्रास्त्र तथा रोग जनित घाव होते हैं।

श्लोक की पहली पंक्ति का सम्बन्ध पिछले श्लोक से है। मारक-दशा के निर्णय के संदर्भ में हम अपने **आयुर्निर्णय, अभिनव भाष्य** के मारकदशाधिकार में विस्तार से विवेचन कर चुके हैं। यहां केवल प्रासंगिक उल्लेख किया जा रहा है। मारक दशा के विषय में १, ८, १० भावों के स्वामी बड़ा महत्त्व रखते हैं। स्पष्ट नियम यह है कि लग्नेश बली हो तो अष्टमेश की दशा और अष्टमेश बली हो तो लग्नेश की दशा मारक होती है। आयुखण्ड का विचार सर्वत्र कर लेना चाहिए। यदि आयुखण्ड के अनुसार मृत्यु सम्भव न दिखती हो तो रोग व शोक की उत्पत्ति उक्त दशाओं में होती है।

५, ६, १० भावेश यदि स्वक्षेत्री हों तो मनुष्य को सफलता देते हैं। अपनी दशा में विशेषतया शुभ कार्यों में व्यय, शुभ व उपकारी कार्यों की सम्पन्नता, आस्तिकता व सद्बुद्धि होती है। विपरीत स्थिति में विपरीत फल समझना चाहिए। इस विषय में सूत्रकार का कथन है—

(i) **पंचमदशमनवमाधिपास्तेषु स्थानेषु स्थिताश्चेन्त्तेषां दशान्तर्दशा समये धर्मोत्पत्तिर्भवति।**

(ii) **एते बलहीनाश्चेद् धर्महानिर्वाच्या।**

(शुकसूत्र)

अन्तिम पंक्ति में गणेश कवि कहते हैं कि लग्नेश व अष्टमेश यदि शनि, राहु, केतु से युक्त हों और षष्ठ में हों तो इनकी दशा में घाव होते हैं। जबकि सूत्रकार ने स्पष्टतया चोर घात या शस्त्रघात से मृत्यु कही है।—

(i) **देहाष्टमपौ मन्देन राहुणा केतुना वा युतौ षष्ठगतौ चेद्दशान्तर्दशासमये चौरेण शस्त्रेण वा मृतिः।**

(शुकसूत्र)

अर्थात् लग्नेश व अष्टमेश दोनों एक साथ षष्ठ स्थान में शनि, राहु या केतु से युक्त हों तो उनकी दशान्तर्दशा में शस्त्र या चोर से मृत्यु होती है।

अस्तु, इस स्थिति में शरीर पर चोट लगने का भय अवश्य रहेगा। लग्नेश व अष्टमेश का स्वयं ही षष्ठ स्थान में बैठना अरिष्ट व कष्ट कारक होता है। षष्ठ स्थान रोग व शत्रु स्थान होने के कारण शरीर कष्ट का द्योतक होगा। शनि, राहु व केतु में से कोई भी वहां हो तो लग्नाष्टमेशों की कुटिलता बढ़ेगी ही। अतः गणेश कवि शरीर कष्ट (घाव) मानते हैं, जबकि सूत्रकार ने यहां मृत्यु भी सम्भव मानी है। परमार्थतः दोनों बातों में कोई बड़ा भेद नहीं है। हमारे विचार से यदि आयु खण्ड समाप्त होता दिखे तो मृत्यु भी सम्भव है, अन्यथा घाव तो होगा ही।

वाहन मरणयोग एवं नवम आदि का कारकत्व :

यानेशस्तत्र संस्थो यदि भवति तदा यानहेतुर्मृतिःस्या
च्चोराच्छस्त्रेण चिन्ता नवमभवनतो भाग्यजाता विधेया।
व्योम्नो भूपालभूषावसनहयमहत्कर्मणां प्राप्तिचिन्ता,
लाभस्थानेऽखिलानां व्ययनिधनगृहात् कल्मषाणां विधेया ।।३६।।

यदि षष्ठ स्थान में चतुर्थेश भी हो तो वाहन से मृत्यु होती है। अथवा चोर व शस्त्र से मृत्यु होती है।

नवम स्थान से भाग्य सम्बन्धी विचार करना चाहिए। दशम स्थान से राज्य, राजा, आभूषण, उत्तम राजसी वस्त्रादिभोग, घोड़े आदि वाहन और महान् कार्यों का विचार करना चाहिए। लाभ स्थान से सभी प्रकार की प्राप्ति का विचार होना चाहिए। द्वादश व अष्टम भाव से सभी प्रकार के मलिन व निम्न श्रेणी के कार्यों का विचार अपेक्षित है।

यहां तक हमने श्लोक का शब्दार्थ बता दिया है। अब इस श्लोक के विषय में हम कुछ और भी कहना चाहते हैं। जातकालंकार के टीकाकारों ने इस श्लोक में पीछे से शनि, राहु व केतु का सम्बन्ध मानकर अर्थ इस प्रकार किया है।

'चतुर्थेश षष्ठ में शनि के साथ हो तो वाहन से, राहु युक्त हो तो चोर से और केतु युक्त हो तो शस्त्र से मृत्यु होती है।'

लेकिन शुकसूत्र कुछ और ही कहता है। पिछले श्लोक की व्याख्या में लग्नेश व अष्टमेश की षष्ठ स्थिति से उत्पन्न मृत्यु की बात सूत्र में

की गई है तथा वहीं सूत्र में शस्त्र व चोर का भी उल्लेख है। अतः शनि, राहु व केतु का योग पिछले श्लोक में तो सूत्र व श्लोक उभयत्र स्पष्ट है। लेकिन फलादेश में सूत्रकार शस्त्र से या चोर से मृत्यु मानते हैं और गणेश कवि केवल चोट लगने की ही बात कहते हैं। उसका समन्वय पीछे किया जा चुका है।

लेकिन इस श्लोक में भी शनि, राहु, केतु का सम्बन्ध बहुत मुश्किल नहीं है। पहले सूत्र देख लें—

(i) **देहाष्टमपौ मन्देन राहुणा केतुना वा युतौ षष्ठगतौ चेद् दशान्तर्दशा समये चौरेण शस्त्रेण वा मृतिः।**

(पूर्वोद्धृत)

(ii) **तत्र वाहनाधिपश्चेद् वाहनमरणम्।**

(शुकसूत्र)

ये दोनों सूत्र क्रमशः प्राप्त होते हैं। दूसरे सूत्र में 'तत्र' शब्द का अर्थ 'षष्ठ स्थान' ही निश्चित है।

लेकिन पिछले श्लोक से यहां **'देहाष्टमपौ'** शब्द का अध्याहार हमारे विचार से होना चाहिए। क्योंकि अकेला चतुर्थेश षष्ठ में बैठकर मृत्यु दे और शनि राहु से युक्त लग्नाष्टमेश केवल व्रण दें, यह बात गणेश कवि के कथन में कुछ गले नहीं उतर रही है। अतः हमारे मत से **सूत्रानुसारी स्पष्ट अर्थ इस प्रकार होना चाहिए—**

'यदि षष्ठ स्थान में लग्नेश व अष्टमेश साथ-साथ हों और शनि से युक्त हों तो चोर घात से मृत्यु सम्भावित है। यदि वे राहु, केतु से युक्त हों तो शस्त्रघात से मृत्यु होती है। (यहां चोर शस्त्र से ही मारेगा या गला दबाकर हमें इस विवाद में पड़ने का औचित्य नहीं दिखता, उभयत्र मृत्यु ही परिणाम है)। अतः उक्त योग में किसी भी कारण से मत्यु हो सकती है लेकिन शरीर पर दवाव पड़ना या चोट लगना स्पष्ट है।

इसी प्रकार लग्नेश व अष्टमेश षष्ठगत होकर चतुर्थेश से युक्त हों तो वाहन से मृत्यु होती है।

वाहनेश का शनि, राहु, केतु से सम्बन्ध न होकर **'देहाष्टमपौ'** से होना चाहिए, ऐसा हमारा विचार है। पं० मुकुन्द दैवज्ञ ने **आयुर्निर्णय** में चतुर्थेश व राहु की षष्ठगत स्थिति से चोर मृत्यु कही है, लेकिन वे

षष्ठ में देहाष्टमपौ के साथ राहु केतु होने से शस्त्र मृत्यु भी कहते हैं। अतः हमारा अर्थ अधिक सूत्रानुसारी सिद्ध होता है—

नीरनिकेतेशोरगनाथौ
मातुलयातौ तस्करतोऽन्तः।
कल्पकलीशौ केत्वहियुक्तौ,
भीभवनस्थौ तद्वद्दुतास्त्रात् ॥

(आर्यनिर्णय, अभिनव भाष्य, पृ० १७५)

'चतुर्थेश राहु युक्त होकर षष्ठ में हो तो तस्कर से मृत्यु होती है। लग्नेशाष्टमेश (कल्प-कलि-ईशौ) राहु केतु से युक्त होकर षष्ठ में (भी-भवन) में हों तो शस्त्र से मृत्यु होती है।'

अब श्लोक की शेष बातों से सम्बन्धित सूत्रों को देखिए। इनका अर्थ श्लोक से मिलता है—

(i) **नवमेन भाग्य चिन्ता।**
(ii) **पितृमातृगुरुस्वामिचिन्ता च।**
(iii) **एवं दशमेन कर्मचिन्ता वस्त्राभरणचिन्ता च।**
(iv) **एकादशेन सर्व लाभचिन्ता।**
(v) **द्वादशेन व्ययचिन्ता पापचिन्ता च।**

सूत्रकार ने नवम स्थान में पिता, माता, गुरु व स्वामी का विचार भी माना है।

द्वादशेश से फल विचार :

लग्नस्थे रिःफनाथे भवति सुवचनो मानवो रूपवान्वा
स्वर्क्षे कार्पण्यबुद्धिर्बहुतरपशुमान् ग्रामयुक्तः सदा स्यात्।
धर्मे तीर्थावलोकी बहुलवृषमतिः क्रूरयुक्ते च पापी
मिथ्याकोशान्तकृत् स्यान्नियतर्मदर्मिति ज्ञेयमेवं सुधीभिः ॥३७॥

यदि द्वादशेश, लग्न में हो तो मनुष्य सुन्दर बोलने वाला या सुन्दर रूप वाला होता है।

यदि द्वादशेश स्वराशि में द्वादश में हो तो मनुष्य कृपणमति, पशु सम्पत्ति से युक्त और जागीरदार अर्थात बड़ा भूमिपति होता है।

द्वादशेश नवम में हो तो तीर्थदर्शन करने वाला, बहुत धार्मिक, होता है।

नवमस्थ द्वादशेश पापयुक्त हो तो मनुष्य पाप कार्य में रत रहता है। साथ ही ऐसा व्यक्ति धन सम्बन्धी बेईमानी (गबन) कर सकता है।

इस श्लोक से सम्बन्धित शुकसूत्र नहीं हैं। अतः कहा जा सकता है कि गणेश कवि ने यह विषय अन्यत्र से लिया है। सामान्यतः द्वादशेश जिस भाव में बैठता है, उस भाव की हानि करता है। इसी कारण ६-८ में बैठ जाए तो अच्छा माना जाता है। अतः श्लोक में अपवाद-स्वरूप फल बताया गया है। द्वादशेश यदि लग्न में हो तो मनुष्य सुन्दर होता है, उसका व्यक्तित्व सुदर्शन व आकर्षक होता है। यह प्रसिद्ध एवं अनुभूत है। लेकिन वह सुन्दर वचन बोलने वाला भी होता है, यह गणेश कवि ने अतिरिक्त बताया है। हमने पाया है कि लग्नेश द्वादश में हो तो मनुष्य प्रखर वाणी वाला, कटु स्पष्टवादी एवं उग्र होता है। इसके विपरीत द्वादशेश लग्न में हो तो वह मीठा बोलने वाला अर्थात् वाणी से मीठा प्रहार करने वाला होता है। वृद्धयवन ने इस विषय में कुछ और विशेष कहा है—

(i) **'व्ययनाथे लग्नगते विदेशगतः सुरूपश्च।**
अपसंगवाददोषी भवति कुमारोऽथवा खञ्जः॥'

(वृद्धयवन)

'द्वादशेश लग्न में हो तो मनुष्य विदेश में रहने वाला, सुरूप, बदनाम लोगों की संगति से स्वयं बदनाम, कुंवारा या लंगड़ा होता है।'

अस्तु, कुंवारापन व लंगड़ापन तो अन्य भावफल सापेक्ष होने से न्यूनाधिक हो सकता है, लेकिन शेष फल बिल्कुल निशाने पर लगता है, पाठक स्वयं भी अनुभव करें। पीछे श्री राजीव गांधी की कुण्डली उद्धृत कर चुके हैं। वहां द्वादशेश चन्द्र लग्न में है। फल प्रत्यक्ष है। वे सुदर्शन व्यक्तित्व के स्वामी, लम्बे समय विदेशगत, साथियों के कारण संदिग्ध तथा मीठा बोलने वाले हैं।

यदि द्वादशेश द्वादश में ही हो तो मनुष्य देखभाल कर खर्च करने वाला एवं संग्रही होता है। ऐसा व्यक्ति ऐश्वर्यवान् एवं कृषिकार्य सम्बन्धी चीजों से कहीं-न-कहीं जुड़ा होता है। **वृद्धयवन** ने भी बिल्कुल ऐसा ही कहा है—

विभूतिमान् ग्रामनिवासचित्तः
सुकर्मबुद्धिः पशुसंग्रही च।
चेज्जीवति ग्रासयुतः सदा स्यात्,
व्ययाधिनाथे व्ययभाव लीने॥

(वृद्धयवन)

'व्ययेश व्यय में हो तो मनुष्य ऐश्वर्यशाली, ग्रामप्रेमी, सत्कर्म कर्ता, पशु संग्रही एवं जीवन पर्यन्त भोजनादि का सुख पाता है।'

निष्कर्ष रूप में भूमिपति एवं सम्पन्न कहा जा सकता है। यहां महाराष्ट्र के किसान नेता **श्री शरद पवार** की कुण्डली प्रस्तुत है—
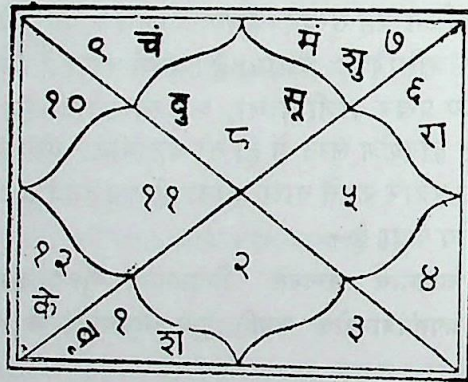
यहां द्वादशेश द्वादश में ही है, अतः ग्राम्य कृषक वर्ग से इनका सम्बन्ध बनता है।

इसी प्रकार द्वादशेश नवम में जाकर तीर्थप्रेमी व बहुत धार्मिक बनाता है।

इस बात से वृद्ध यवन भी सहमत हैं—

'व्ययनाथे सुकृतगते तीर्थालोकी ततो ध्ययितः वृत्तिः।
क्रूरे च खगे पापान्निरर्थकं याति तद् द्रव्यम्॥'

(वृद्धयवन)

'तीर्थाटन प्रेमी, धन व्यय करने वाला होता है लेकिन वह पापयुक्त हो तो उसका धन निरर्थक व्यय होता है।'

गणेश कवि कहते हैं कि नवम में द्वादशेश यदि हो, तीर्थ प्रेमी व धार्मिक हो और साथ में कोई पाप ग्रह हो तो मिथ्या अर्थात् झूठमूठ के कार्यों में या निरर्थक कार्यों में व्यय करता है।

कदाचित् धर्म स्थान में पापी व्ययेश पापयुक्त होकर बैठे तो हमने पाया है कि वे लोग झूठे कागजात, खर्चे वगैरह दिखाकर मोटी रकम ऐंठने के लिए सदा हाथ धोकर तैयार रहते हैं। ये बेईमान होते हैं और रुपये-पैसे के व्यवहार में बिल्कुल भी खरे नहीं होते हैं।

यदि पापी व्ययेश शुभयुक्त हो या अकेला हो तो वे उत्पादक कार्यों में धन व्यय नहीं करते हैं। यदि व्ययेश शुभ हो तो निश्चय से धार्मिक होते हैं। प्रस्तुत कुण्डली में व्ययेश शुभ है और नवम में है। इनकी धार्मिकता में किसे सन्देह हो सकता है। यह रामानुज सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य रामानुज जी की कुण्डली है—
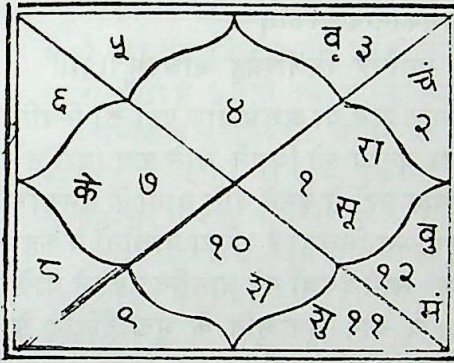
श्री रामानुजाचार्य
लग्न—3-7°—शक संवत् 939
चैत्र शुक्ल पंचमी सोमवार

उपसंहार :

हृद्यैः पद्यैर्गुम्फिते सूरितोषे-
ऽलङ्काराख्ये जातके मञ्जुलेऽस्मिन्।
भावाध्यायः श्रीगणेशेन वर्यै-
र्वृत्तैर्युक्तः शैलरामैः प्रणीतः ॥३८॥

विद्वानों को सन्तोष देने वाले इस सुन्दर 'जातकालंकार' में श्री गणेश कवि रचित सैंतीस श्लोकों वाला यह प्रस्तुत भावाध्याय समाप्त हुआ।

॥ इति पं० सुरेशमिश्रकृतायां नवाख्यायां जातकालंकारव्याख्यायां भावफलाध्यायो द्वितीयः ॥

[३]

अथ योगाध्याय:

ग्रन्थकार का उपोद्घात :

ग्रहाधीना योगाः सदसदभिधाना जनिमतां
ततो योगाधीनं फलमिति पुराणैः समुदितम् ।
अतो वक्ष्ये योगान् सकलगणकानन्दजनकान्
शुकास्यादुद्भूतं मतमिह विलोक्येह रुचिरम् ॥१॥

मनुष्यों के भाग्य से सम्बन्धित शुभ या अशुभ योग ग्रहों की स्थिति पर निर्भर करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य को मिलने वाले फल (प्राप्ति) की निर्भरता योगों पर है। अर्थात् ग्रहों से बनने वाले योगों के अनुसार ही मनुष्य को जीवन में शुभाशुभ फल मिलता है। ऐसा प्राचीनों ने कहा है। इसी कारण मैं (गणेश दैवज्ञ) सभी दैवज्ञों को आनन्दित करने वाले योगों को प्रस्तुत कर रहा हूं। ये योग शुक मुनि के मुखारविन्द से निःसृत सुन्दर जातक मत को देखकर कहे गए हैं।

ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक आचार्यों ने ग्रहाधीन ही समस्त प्रपंच को बताया है। जो फल हमें मिलना है, उसकी अभिव्यंजना ग्रह योग उसी प्रकार करते हैं, जैसे अन्धकार में स्थित पदार्थों को दीपक। वराहमिहिर ने भी कहा है—

'यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिः।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥'

इसीलिए ग्रह योगों की महत्ता सम्यक्तया स्फुट है। जैसा कि पहले भी संकेत कर चुके हैं कि गणेश कवि जी जिस संरम्भ के साथ अपने जातकालंकार को मंजुल व स्वयं को कवि कहते हैं, उस गौरव का निर्वाह वे नहीं कर सके हैं। इनका कवित्व शिथिल ही था। अन्तिम चरण में 'मतमिह विलोक्येह रुचिरम्' में 'इह' शब्द की पुनरावृत्ति तक कर डाली है। अस्तु, पुस्तक के योग अच्छे हैं, अतः हमें उसी पर ध्यान

रखना चाहिए। विशिष्ट एवं अनुशासनप्रिय मस्तिष्क वाले पाठकों के लिए न्यूनताओं का प्रदर्शन किया जाता है। हमारा उद्देश्य गणेश कवि जी की निन्दा करना नहीं है।

कुछ अनिष्ट योग :

ऋक्षेशः क्षीणवीर्यः सुतनवमगतो मानवो मन्युमान् वै
राशीशे साङ्गनाथे रिपुनिधनगृहे प्रान्त्यगे दुर्बलः स्यात्।
धर्मद्वेष्याष्टनाथाः खलखचरयुताः स्थानके क्वापि संस्था
स्तैर्दृष्टाः स्यात्तदानीं परपुरुषरता सुन्दरी तस्य पुंसः ॥२॥

जिस व्यक्ति की जन्म कुण्डली में चन्द्रमा (ऋक्षेश) त्रिकोण स्थानों में हो और वह दुर्बल अर्थात् क्षीण भी हो तो व्यक्ति क्रोधी स्वभाव वाला होता है, अर्थात् तब भी स्वास्थ्य तो कम से कम ठीक रहता है।

लग्नेश व चन्द्रमा की अधिष्ठित राशि का स्वामी अर्थात् जन्म राशीश, ये दोनों ही ६, ८, १२ भावों में स्थित हों तो व्यक्ति शरीर से कमजोर व कोमल शरीर वाला होता है।

षष्ठ, अष्टम व नवम भाव के स्वामी यदि पाप ग्रहों से युक्त या दृष्ट होकर कहीं भी स्थित हों तो उस व्यक्ति की स्त्री परपुरुष गामिनी होती है।

सामान्यतः लग्न, लग्नेश व चन्द्र की निर्बलता अरिष्ट की द्योतक होती है। लेकिन ग्रन्थकार का कथन है कि चन्द्रमा यदि क्षीण बली होकर भी त्रिकोण में गया हो तो मनुष्य को रोगादि नहीं होता, लेकिन वह क्रोधी स्वभाव वाला होता है। अस्तु, चन्द्र मनोवृत्ति का अधीश होकर क्षीण बली होते हुए भी बुद्धि व भाग्य स्थान में बैठकर मनुष्य को मनोमालिन्य देकर झुंझलाहट व गुस्सा अवश्य देगा।

इस श्लोक की व्याख्या में प्राचीन टीकाकारों ने **'ऋक्षेश'** शब्द से चन्द्रमा की अधिष्ठित राशि के स्वामी का ग्रहण किया था, जो अब सूत्रों के परिप्रेक्ष्य में भ्रमात्मक सिद्ध हो गया है। अतः हमने चन्द्रमा का ही ग्रहण किया है। इसमें प्राचीन टीकाकारों की हीनता द्योतित नहीं होती है, क्योंकि ऋक्ष शब्द नक्षत्र, तारा व राशि का वाचक है। अतः नक्षत्रेश व चन्द्र ये दोनों अर्थ ही साधु हैं, लेकिन यहां चन्द्रमा ही अभीष्ट है। आप स्वयं सूत्र को देखकर निश्चय कर सकेंगे।

(i) **बलहीनोऽपि चन्द्रस्त्रिकोणे स्थितश्चेद् व्याधिमान् न भवति।**

(ii) **किन्तु कोपवान्।**

(शुकसूत्र)

'बलहीन होकर भी चन्द्रमा यदि त्रिकोण में हो तो मनुष्य रोगी नहीं होता, केवल क्रोधी होता है।'

लग्नेश व चन्द्र राशीश इन दोनों की स्थिति ६, ८, १२ में हो तो मनुष्य का स्वास्थ्य प्रायः उतार-चढ़ाव वाला रहता है। इस विषय से सम्बद्ध सूत्र प्रस्तुत है—

(i) **देहपयुक्तराश्यधिपः षष्ठाष्टमव्ययेषु स्थितश्चेत्तदा दुर्बलः स्यात्।**

(शुकसूत्र)

'लग्नेश व चन्द्र राशीश ये दोनों ही ६, ८, १२ में हों तो मनुष्य दुर्बल होता है।'

अब स्त्री के चरित्र के विषय में गवेषणा करते हैं। सप्तम स्थान स्त्री स्थान है। अतः सप्तम से पिछला स्थान स्त्री के पापाचार का द्योतक होगा (द्वादशे व्ययचिन्ता पापचिन्ता च)। सप्तम से अगला स्थान परिवार स्थान होगा। एवं सप्तम से तृतीय स्थान स्त्री की हिम्मत व पराक्रम का द्योतक होगा। अतः ६, ८, ९ भावों के स्वामियों पर पाप प्रभाव स्त्री के पापाचार की सीमा का निर्णय करने में सहायक होगा।

(i) **अथ स्त्री लक्षणम्।**

(ii) **षष्ठाष्टमनवमपाः सपापाः यत्र कुत्रापि पापैर्दृष्टा वा चेत्तस्य जातस्य स्त्रियः परसंगो भवति।**

(शुकसूत्र)

'स्त्री के विषय में विचार करते हैं। ६, ८, ९ भावेश कहीं भी पाप युक्त या पाप दृष्ट हों तो उसकी स्त्री परपुरुष संगिनी होती है।'

परजात योग विचार :

मातृस्थाने स्थितौ चेत्कुजविधुसहितौ षष्ठरन्ध्राधिनाथौ
स्यातां यस्य प्रसूतौ भवति खलु नरस्त्वन्यजातस्तदानीम्।
क्वापि स्थाने स्थितौ स्तः कलुषखगयुतौ भाग्यषष्ठाधिनाथौ
चेदेवं राहुणा वा तदनु च शिखिना संयुतावन्यजातः॥३॥

जिसकी जन्म कुण्डली में चतुर्थ स्थान में षष्ठेश, अष्टमेश, चन्द्रमा एवं मंगल ये चारों एकत्र हों तो मनुष्य अपने वैधानिक पिता की संतान नहीं होता है, अर्थात् उसकी माता परपुरुष से उसे उत्पन्न करती है।

षष्ठेश व नवमेश, ये कहीं भी पाप ग्रहों से युक्त होकर स्थित हों तो भी मनुष्य परजात होता है।

इसी प्रकार षष्ठेश व नवमेश यदि राहु या केतु से युक्त होकर एकत्र स्थित हों तो भी मनुष्य परजात होता है।

फलित ग्रन्थों में तिथि, वार, नक्षत्रों के योगों से और ग्रह स्थितियों से परजात योगों का उल्लेख किया गया है। लेकिन ये योग कुछ लीक से हटकर हैं। सम्बद्ध सूत्रों का पाठ प्रस्तुत है—

(i) **कुजबुधषष्ठाष्टमपाः मातृस्थानस्थिताश्चेत् पितृरहितस्य जातस्य मातान्यसंगेन गुर्विणी प्रसूतेति।**

(ii) **षष्ठनवमपौ सपापौ एकत्र यत्र कुत्रापि स्थितावप्येवम्।**

(iii) **तत्र राहुकेतुभ्यां युतावप्यन्यसंगमकरौ।**

(गुरुसूत्र)

'मंगल व बुध से युक्त षष्ठेश व अष्टमेश चतुर्थ में हों तो बालक की माता पर पुरुष संग से प्रसव करती है।

षष्ठेश व नवमेश एकत्र होकर पापयुक्त कहीं भी हों तो भी उक्त फल होता है।

षष्ठेश व नवमेश राहु या केतु से युक्त हों तो भी अन्य पुरुष का संग सिद्ध होता है।'

सूत्र में **'कुजबुधषष्ठाष्टमपाः'** पाठ होने से सन्देह होता है, क्योंकि श्लोक में **'कुजविधुसहितौ'** कहा गया है। अतः बुध या चन्द्रमा से किसे योगकारक माना जाए। लिपिभ्रम यहां सम्भव है। विधु या बुध से छन्द में भी कोई भेद नहीं होता है। जातकालंकार के उपलब्ध संस्करणों में 'कुजविधुसहितौ' ही कहा गया है। हमारे विचार से 'कुजविधु' वाला पाठ ही प्रामाणिक है। सूत्रों के लिपिकार से ही भ्रम हुआ होगा, ऐसा प्रतीत होता है। कारण यह है कि अगले श्लोक से सम्बद्ध सूत्र में 'शनि' को 'शशि' बता दिया गया है। गणेश कवि ने स्पष्टतया 'मन्द' शब्द का प्रयोग किया है, अतः भ्रम का अवसर ही नहीं है। साथ ही जातक तत्त्व में भी 'कुजविध' वाला अर्थ ही ग्रहण किया है। इस ग्रन्थ

में जातकालंकार के योगों को भी संग्रहीत किया है। विशेष विस्तार हेतु हमारा **जातक तत्त्व अखिलाक्षरा** पृ० ४४-४५ देखें।

परजात योग यद्यपि सभी जातक ग्रन्थों में कहे गए हैं, लेकिन जातकालंकार के ये योग इससे पूर्ववर्ती ग्रन्थों में नहीं मिलते हैं। अतः ये विशेष महत्त्व रखते हैं।

माता-पिता का दुराचरण :

युक्तौ मन्देन शूद्रादथ भवति विदा वैश्यतो भास्करेण
क्षत्राज्जातः सितेन त्रिदशपगुरुणा भूमिदेवात् प्रसूतः।
दैत्येशेज्यौ स पापौ मदनरिपुधनस्थानगौ चेत्परस्त्री
गामीव्योमारिपौ स्तो गगनभवनगौ तत्पिताऽन्यारतः स्यात् ॥४॥

यदि षष्ठेश एवं नवमेश शनि से युक्त हो तो माता ने शूद्र के साथ रमण कर पुत्र उत्पन्न किया होगा।

बुध से युक्त होने पर वैश्य के संग से पुत्र उत्पन्न होता है।

यदि भाग्येश व षष्ठेश सूर्य से युक्त हों तो क्षत्रिय से पुत्र उत्पन्न किया है, ऐसा समझना चाहिए।

यदि षष्ठेश व नवमेश शुक्र या बृहस्पति से युक्त हों तो माता ने ब्राह्मण के साथ रमण किया होगा, ऐसा समझना चाहिए।

यदि किसी की जन्म कुण्डली में शुक्र व बृहस्पति पाप ग्रहों से युक्त होकर सप्तम, षष्ठ या द्वितीय स्थान में स्थित हों तो उस व्यक्ति का पिता परस्त्रीगामी होता है।

यदि दशमेश एवं षष्ठेश दोनों ही दशम स्थान में हों तो भी ऐसे व्यक्ति का पिता परस्त्री में आसक्त होता है।

इस श्लोक का सम्बन्ध पिछले श्लोक सं० ३ से है। भाग्येश व षष्ठेश का अध्याहार वहीं से किया गया है। परजात योगों में अवैधानिक पिता के ब्राह्मणादि वर्ण की व्यवस्था में इस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए।

पिता के दुराचरण के नियमों से यह समझना चाहिए कि उसका पिता पराई स्त्रियों में आसक्त होता है। यह आवश्यक नहीं होगा कि उसी पराई स्त्री से जातक का जन्म हुआ हो।

इस विषय में शुक सूत्र का पाठ इस प्रकार है—

(i) शशिना (शनिना) शूद्रसंगः।

(ii) बुधेन वैश्यसंगः।

(iii) गुरुशुक्राभ्यां ब्राह्मणसंगः।

(iv) शुक्रजीवौ सपापौ कुटुम्बकलत्रषष्ठस्थौ चेत् परस्त्रीसंगः।

(v) षष्ठपितृपौ पितृस्थानस्थितौ चेत्तस्य पितापरजातो भवति।
(परजायारतो भवति)। (शुकसूत्र)

जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि षष्ठेश व नवमेश शनि से युक्त हों तो व्यक्ति शूद्र पिता (अवैधानिक) की सन्तान होता है। सूल में 'शनिना' के स्थान पर कदाचित् लिपिकार के भ्रम से 'शशिना' हो गया होगा। क्योंकि गणेश कवि ने 'मन्द' शब्द का प्रयोग किया है, जो कि निश्चय से शनि का ही वाचक है। सूत्र (iv) तक अर्थ स्पष्ट और जातकालंकार से मेल खाता है। लेकिन सूत्र (v) में उक्त योग में अर्थात् षष्ठेश, दशमेश की दशम स्थिति में सूत्रकार ने पिता को परजात बताया है। गणेश कवि ने स्पष्टतया इस योग में जातक को पराई स्त्री अर्थात् विवाहितेतर स्त्री से उत्पन्न बताया है, न कि उसके पिता को अवैध सन्तान माना है। अतः हमने स्वयं पाठान्तर की प्रसंगानुरोध से कल्पना की है। क्योंकि अगले श्लोक व सूत्रों में भी पिता को ही पराई स्त्री में रत बताया गया है।

पिता का परस्त्री सम्बन्ध :

मूर्तीशः पापयुक्तो धनसदनगतश्चेत्तदा सज्जनस्त्री-
संयुक्तस्तत्पिता स्यात्खलविहगयुताः कामशत्रुस्वनाथाः।
कोशस्थास्तद्वदेवं फलमिति विविधं भ्रातृपत्न्योश्च पित्रोः
स्थानेशाः क्वापि भावे तनुपतिसहिताश्चेत् पुमानन्यजातः॥५॥

यदि किसी की कुण्डली में लग्नेश पाप ग्रहों से युक्त होकर द्वितीय स्थान में स्थित हो तो ऐसे व्यक्ति का पिता किसी सज्जन स्त्री में रत होता है।

इसी प्रकार यदि सप्तमेश, षष्ठेश और द्वितीयेश पाप ग्रहों से युक्त होकर द्वितीय स्थान में स्थित हों तो भी ऐसे व्यक्ति का पिता सज्जन स्त्री के प्रेमपाश में बंधा होता है।

यदि किसी की कुण्डली में तृतीयेश, सप्तमेश, चतुर्थेश व दशमेश ये चारों लग्नेश के साथ एकत्र कहीं भी स्थित हों तो ऐसे योग में बालक परजात होता है।

इस श्लोक के प्रथम तीन चरणों में बालक के पिता की प्रेमिका के सम्बन्ध में योग बताए गए हैं। लेकिन चतुर्थ चरण में पुनः जारजात योग बताए गए हैं। सूत्रों का अविकल पाठ इस प्रकार है—

(i) **देहपतिः सपापः कुटुम्बस्थानस्थितश्चेत् सज्जनस्त्रीसंयुक्तस्तस्य पिता।**

(ii) **एवं सपापः कलत्रषष्टकुटुम्बपः कुटुम्बस्थानस्थितश्चेत् परस्त्रीसंयुक्तस्तस्य पिता भवति।**

(iii) **पितृमातृकलत्रदेहपा यत्र कुत्राप्येकस्थिताश्चेत् परजाता भवन्ति।**

(शुकसूत्र)

पहले दो सूत्रों के अर्थ में श्लोक के अर्थ से कोई भेद नहीं है। लेकिन तीसरे सूत्र में कहा गया है कि दशमेश, चतुर्थेश, सप्तमेश व लग्नेश ये चारों एकत्र हों तो परजात योग होता है। जबकि श्लोक में इस योग में तृतीयेश का भी ग्रहण किया गया है। अतः वहां योगकारक ग्रहों की संख्या पांच हो जाती है और सूत्र में केवल चार हैं।

कुष्ठ योगों के विशेष योग :

लग्नाधीशेन्दुपुत्रौ क्षितितनयनिशानायकौ क्वापि संस्थौ
युक्तौ स्वर्भानुना वा भवति हि मनुजः केतुना श्वेतकुष्ठी।
आदित्यो भौमयुक्तस्तदनु शनियुतो रक्तकृष्णाख्यकुष्ठी
सार्को लग्नाधिनाथो व्ययरिपुनिधनस्थानगस्तापगण्डः॥६॥

लग्नेश एवं बुध अथवा मंगल और चन्द्रमा किसी भी भाव में बैठकर राहु-केतु से युक्त हों तो मनुष्य को सफेद कोढ़ होता है।

यदि सूर्य मंगल से युक्त हो तो रक्त कुष्ठ एवं सूर्य शनि से युक्त हो तो कृष्ण कुष्ठ होता है।

लग्नेश एवं सूर्य दोनों साथ-साथ ६, ८, १२ में हों तो मनुष्य को बारम्बार बुखार के विविध प्रकारों से पीड़ित होना पड़ता है।

यहां उक्त रोगों के विशेष योग बताए गए हैं तथा ये योग नये एवं सटीक हैं। सम्बद्ध सूत्र प्रस्तुत हैं—

(i) **लग्नपकुजबुधचन्द्राः राहुकेतुभ्यां सह यत्र क्वापि स्थिताश्चेत्तदा श्वेतकुष्ठी भवति।**

(ii) **आदित्योऽगारकेण युक्तश्चेत्तदा रक्तकुष्ठी।**

(iii) **शनिना कृष्णकुष्ठी।**

(iv) **तद् गृहस्थानेऽपि वाच्यम्।**

(v) **लग्नपो रविणा युतः षडादिषु त्रिषु स्थितश्चेज्ज्वरगण्डः।**

(शुकसूत्र)

(i) 'लग्नेश, मंगल, बुध एवं चन्द्रमा ये चारों राहु-केतु से युक्त होकर किसी भी स्थान में स्थित हों तो मनुष्य को सफेद कोढ़ होता है।'

सूत्र से ऐसा आशय प्रकट होता है कि ये चारों साथ होकर राहु-केतु से युक्त हों तो सफेद कोढ़ होगा। लेकिन श्लोक में दो भागों में बांटकर इस योग को बताया गया है। लग्नेश, बुध अथवा मंगल, चन्द्रमा यदि राहु-केतु से युक्त हों तो उक्त फल होगा, ऐसा ग्रन्थकार का आशय प्रकट होता है।

लेकिन हमारे विचार से सूत्रकार की बात अधिक सटीक है। फिर गणेश कवि जी ने सम्भवतः अनजाने में इसे दो भागों में बांट दिया है। क्योंकि लग्नेश, बुध एवं राहु का योग कई कुण्डलियों में हमने देखा है, लेकिन वहां त्वचा रोग नहीं था। अतः चारों से ही योग समझना चाहिए।

इसके बाद सूत्र (ii) (iii) में अलग-अलग दो योग बताए गए हैं, जिन्हें जातकालंकार के पूर्व टीकाकारों ने एक ही योग समझ लिया है। सूर्य व मंगल का योग रक्त कुष्ठप्रद एवं सूर्य, शनि के योग में कृष्ण कुष्ठ होता है, ऐसा अर्थ शुद्ध है।

साथ ही सूत्रों में एक बात और अधिक बताई गई है। सूर्य की राशि सिंह में मंगल या शनि या दोनों भी हों तो भी कुष्ठ की सम्भावना बनी रहेगी। (तद्गृहस्थानेऽपि वाच्यम्) अथवा मंगल या शनि की राशि में सूर्य हो तो भी त्वचा रोग हो सकता है।

अब सूत्र ५ के विषय में कहना है कि '**षडादिषु**' शब्द का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है—

(i) ६, ८, १२ भावों का वर्ग षडादि है।

(ii) षट् आदौ येषां तेषु आनुपूर्व्येषु भावेषु अर्थात् ६, ७, ८ भाव भी षडादि होंगे ।

गणेश कवि ने प्रथम अर्थ को माना है। द्वितीय अर्थ की भी परीक्षा पाठकों को करनी चाहिए। सूत्र (v) में ज्वरगंड अर्थात् बुखार में टयूमर. गिल्टी आदि बन जाना, कदाचित् 'प्लेग' के विषय में बताया गया है।

कुष्ठ रोगों के विषय में श्लोकोक्त प्रकार से भी पृथक्-पृथक् त्वचा विकार होने की सम्भावना पर अवश्य विचार करना चाहिए।

विशेषतया मंगल या बुध लग्नेश हों अर्थात् १, ८, ३, ६ लग्न में जन्म हो और लग्न में लग्नेश, चन्द्र, राहु, केतु में से अधिकाधिक सम्भव ग्रहों का योग हो तो अवश्य ही त्वचा विकार दृष्टिगत होता है। यहां विचारार्थ एक कुण्डली प्रस्तुत है—
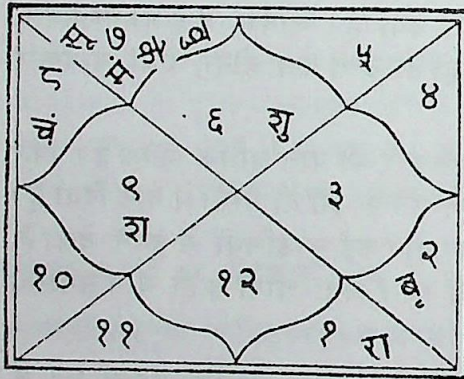
जन्म सं० १९८९ भैया दूज
निकट दिल्ली
अक्षांश—२९°, २०′ उत्तर

(i) लग्नेश बुध व मंगल केतु से युक्त हैं, साथ ही द्वादशेश सूर्य भी मंगल से युक्त है। (आदित्योऽगारकेणयुक्तः)

अर्थात् दो तरह से कुष्ठ योग बनता है। लेकिन इन्हें वर्तमान काल (६० वर्ष अवस्था) तक कुष्ठ तो क्या त्वचा विकार भी नहीं हुआ है।

अतः लग्न में यह युति होती तो सम्भवतः प्रबल फल मिलता। इससे हमारी बात पुष्ट होती है कि लग्नेश, कुज, बुध, चन्द्र की इकट्ठी युति राहु-केतु से हो तो कुष्ठ योग बनेगा।

गण्ड रोगों का प्रस्तार :

ज्ञेयश्चन्द्रेण गण्डो जलज इह युतो ग्रन्थिशस्त्रव्रणःस्याद्
भूमीपुत्रेण पित्तं हिमकरतनयेनाथ जीवेन रोगः।

आमोद्भूतस्ततश्चेद्भृगुतनययुतो नुः क्षयाख्यो गदःस्या
च्चौरोद्भूतोऽन्त्यजाद्वा यमशिखितमसामेकयुक् तन्वधीशः ।।७।।

यदि त्रिकों में (६,८,१२) लग्नेश चन्द्रमा से युक्त हो तो **'जल गण्ड'** होता है। अर्थात् पानी से उत्पन्न रोग हो सकता है।

यदि लग्नेश के साथ त्रिक में मंगल हो तो हथियार की चोट का घाव बनकर उसमें गम्भीर विकृति उत्पन्न हो सकती है।

इसी प्रकार त्रिक स्थानों में लग्नेश बुध से युक्त हो तो **'पित्त रोग'** होता है।

यदि त्रिकों में लग्नेश गुरु से युक्त हो तो मनुष्य को **'आम रोग'** अर्थात् 'दस्त में आंव' रोग होता है।

यदि लग्नेश त्रिकों में शुक्र से युक्त हो तो **'क्षय रोग'** होता है।

यदि लग्नेश उक्त प्रकार से त्रिक स्थानों में शनि, राहु, केतु से युक्त हो तो मनुष्य को चोरों या नीच वृत्ति लोगों (चाण्डाल) से रोग कष्ट होता है।

इस श्लोक का सम्बन्ध पिछले श्लोक के अन्तिम चरण से है। वहीं से त्रिक्भाव (षडादिषु) और लग्नेश का अध्याहार हो रहा है।

गण्ड रोग का भी वाचक है और गिल्टी का भी। कदाचित् बड़े रोग को गण्ड कहते हैं। ज्वर गण्ड अर्थात् भीषण बुखार (प्लेग), जल गण्ड अर्थात् पानी की विकृति से उत्पन्न रोग या शरीर में पानी बढ़ने से होने वाले रोग को ग्रहण करना चाहिए।

अन्तिम चरण में बताए अनुसार ऐसे योग में चोरों व चाण्डालों से गण्ड का तात्पर्य इनके कारण उत्पन्न रोग समझने चाहिएं।

सम्बन्धित सूत्रों का पाठ इस प्रकार है—

(i) **चन्द्रेण जलगण्डः।**
(ii) **भौमेन ग्रन्थिशस्त्रव्रणः।**
(iii) **बुधेनपित्तम्।**
(iv) **गुरुणा आमरोगः।**
(v) **शुक्रेण क्षयरोगः।**
(vi) **शनिना चाण्डालचौराभ्यां गण्डः।**
(vii) **राहुकेतुभ्यामपि योज्यम्।**

(viii) **एवं पितृमातृभ्रातृकलत्रपुत्राणां तत्तत्कारकभावस्थानयोगेन सर्वं वाच्यम् ।**

(शुकसूत्र)

अर्थ श्लोक की व्याख्या से सर्वथा मिलता है। सूत्र (viii) में इसी प्रकार पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री आदि के कारकों का उक्त प्रकार से ग्रहों से योग, उन्हीं भावों से त्रिकों में (यथा पितृ स्थान दशम के त्रिक ३, ५, ६) होने से उक्त रोगों की सम्भावना बताई गई है। यह बात गणेश कवि ने छोड़ दी है।

पीछे अध्याय २, श्लोक १६ की व्याख्या में कर्क लग्न वाली कुण्डली में स्वयं लग्नेश चन्द्र द्वादश स्थान में है। अत: लग्नेश व चन्द्रमा त्रिक में हैं। इन्हें नजला, जुकाम बार-बार होता है। अभी तक 'जल गण्ड' जैसी बात नहीं है। कदाचित् इन योगों में पाप प्रभाव भी आवश्यक है, तभी उक्त प्रकार से फल मिलेगा।

उदाहरणार्थ हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** पृ० ६८ पर उद्धृत श्री मोरार जी देसाई की कुंण्डली में लग्नेश बुध व मंगल अष्टम में हैं। अत: शस्त्रव्रण योग हुआ।

अष्टम में ही लग्नेश एवं बुध (दोनों स्वयं बुध) होने से **वित्त योग** बना। अष्टम में ही लग्नेश बुध एवं शुक्र का योग होने से **'क्षय रोग'** का योग बना। लेकिन जहां तक हमारी जानकारी है, इन्हें क्षयादि रोग तो सम्भवत: नहीं हुआ। जैसा कि प्रसिद्ध है ये स्वस्थ एवं लम्बी आयु वाले हैं। अत: हमारे विचार से ये योग अकेले बहुत प्रभावशाली नहीं हैं। इनके साथ अन्य दुर्योगों का होना भी रोगोत्पत्ति के लिए आवश्यक है।

कुष्ठरोग व मुखरोग के योग

चन्द्रो मेषे वृषे वा कुजशनिसहितः श्वेतकुष्ठी सरोगो,
दैत्येज्यारेन्दुमन्दास्तिमिभवनगताः कर्कटालिस्थिता वा।
अंगे सौख्येन हीनः परमकलुषकृद्रक्तकुष्ठी नरः स्याद्,
वागीशो भार्गवो वा यदि रिपुगृहपो मूर्तिगः क्रूरखेटैः ॥८॥

जन्म समय यदि चन्द्रमा मेष या वृष राशि में हो और मंगल और शनि भी साथ में हों तो मनुष्य श्वेत कुष्ठ (Leucoderma) से पीड़ित होता है। इसी प्रकार शुक्र, मंगल, शनि एवं चन्द्रमा ये मीन या

कर्क राशि में हों तो मनुष्य परम कलुषित कार्य करने वाला और रक्त कुष्ठी होता है। इस योग में सर्वथा शरीर सुख की न्यूनता होती है। यदि शुक्र या बृहस्पति षष्ठेश होकर लग्न में स्थिर हो और क्रूर ग्रह भी इन्हें देखते हों तो मनुष्य के मुख में रोग होता है।

वास्तव में चन्द्रमा शरीर सौन्दर्य एवं रूप सम्पदा का अधिष्ठाता है। मंगल रक्त का प्रतिनिधि है और शनि वात का। बुध का सीधा सम्बन्ध स्नायु मण्डल से होता है। अब हम पाठकों को बताना चाहते हैं कि उक्त योग बड़े सटीक हैं। अर्थात् इन योगों में उक्त फल अवश्य मिलता है। लेकिन 'कुष्ठ' शब्द से जो तात्पर्य आजकल समझा जाता है, कोढ़ अर्थात् Leprosy जैसी बात ही नहीं थी। सामान्यत: रक्त विकार एवं वायु विकार से और विरोधी आहार-विहार से उत्पन्न ऐसी रक्त सम्बन्धी विकार जो खाल के ऊपर भी अपना संक्षिप्त या व्यापक प्रभाव दिखाए, कुष्ठ कहलाती थी। इस स्थिति में आजकल के दाग दाद, खाज, फोड़े, फुंसी, मकड़ी विकार, एग्जिमा आदि का भी संग्रह इन योगों में ही होगा। कहा गया है—

वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग् रक्तं मांसमम्बु च।
दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्य संग्रहः ॥

'अर्थात् वात (वायु) आदि जब शरीर के अन्दर कुपित होती है, अर्थात् वात, पित्त व कफ प्रकुपित होकर जब खाल, रक्त, मांस एवं जल को दूषित करते हैं तो 'कुष्ठ' होता है। वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त, मांस एवं जल ये सात द्रव्य 'कुष्ठ' के आधार हैं।'

अब आपको इन योगों की गुत्थी सुलझती दिखेगी। आप देख चुके हैं कि सभी कुष्ठ योगों में प्राय: शनि, मंगल, चन्द्रमा, बुध, शुक्र, राहु आदि का किसी-न-किसी रूप में ग्रहण है।

शनि वात का, बुध त्रिदोष का, चन्द्रमा कफ एवं जल का, शुक्र सौन्दर्य का, मंगल रक्त का एवं राहु साथी ग्रह की विकृति को छायावत् ग्रहण करने वाला है। ऊपर आयुर्वेद के श्लोक में भी इन्हीं तत्त्वों का ग्रहण किया गया है।

अत: इन सबके विकार के योग होने पर जातक के शरीर में त्वचा सम्बन्धी बीमारी एवं उससे सावधानी की सलाह अवश्य देनी चाहिए। विरुद्ध आहार-विहार से बचना चाहिए। क्योंकि बड़ा कुष्ठ भी तब

सम्भावित हो सकेगा। अतः **कुष्ठ शब्द से सामान्यतः त्वचा की सभी विकृतियों का ग्रहण है।**

कोई भी रोग एकदम नहीं होता है। अतः ऐसे योगों में कुष्ठरोग के पूर्वरूप एवं पूर्वावस्था जानकर उनसे बचना चाहिए। आयुर्वेद के विद्वानों ने कुष्ठ के पचासों भेद माने हैं। इनमें अठारह भेद तो प्रमुख हैं। ७ प्रकार का महाकुष्ठ एवं ११ प्रकार का क्षुद्रकुष्ठ माना गया है।

महाकुष्ठों में तो आजकल के सभी कोढ़ों का ग्रहण हो जाएगा। लेकिन क्षुद्र कुष्ठों में उन्होंने क्रमशः इनका ग्रहण किया है—

(i) **कुष्ठचर्म**—मछली के टुकड़े के समान, हाथी की खाल की रंगत वाला, सूखा, पसीना रहित एवं मोटी पपड़ी वाला होता है। इसे सामान्य भाषा में '**चमला**' अथवा '**एग्जिमा**' कहते हैं।

(ii) **किटिम कुष्ठ**—स्पर्श में रूखा, कठोर एवं कालापन लिये, थोड़े स्थान में फैलने वाला है। इसे हम 'मस्सा' कह सकते हैं।

(iii) **वैपादिक कुष्ठ**—हाथ पैरों में लगातार लम्बे समय तक होने वाली, वेदनाकार बहुत सी फुंसियां होती हैं।

अलसक अर्थात् मुहांसे जैसी फुंसियां और मुहांसे, **दाद**, **चर्मदल**, अर्थात् बहने वाले, लाल, खुजली युक्त फोड़े जो छूने से दर्द करें। **पामा** अर्थात् छोटी-छोटी फुंसियां, पीप वाली, जलन वाली अर्थात् पिड़िका (पिड़िया, फुड़िया, फुंसी) आदि। पामा जैसा ही तीव्र दाह वाला **कच्छु**, **विस्फोटक**, **शतारू** अर्थात् लाल रंग का, पकने वाला बड़ा एक फोड़ा और **विर्चचिका** अर्थात् खुजली ये ११ क्षुद्र कुष्ठ माने गए हैं। अतः योगों के विशेष बल को देखकर फल कहना चाहिए। उक्त विवरण गरुड़ पुराण के आधार पर दिया गया है। अतः प्रबल योगों में कुष्ठ एवं मध्यम सामान्य योगों में क्षुद्र कुष्ठ अर्थात् दाद, खुजली, एग्जिमा आदि बतलाना चाहिए।

इस श्लोक से सम्बन्धित योगों में चन्द्रमा मेष व वृष लग्न में उक्त प्रकार से कुज शनि सहित हो तो विशेष प्रभावशाली योग बनेगा। इसी प्रकार ऐसे स्थानों पर बैठकर भी जहां से लग्न या लग्नेश पर विशेष दृष्टि प्रभाव रख सकें, विशेष प्रभावी होंगे।

शुक्र, मंगल, शनि एवं चन्द्रमा ये चारों मीन या कर्क लग्न में एकत्र हों तो या उक्त राशि में कहीं भी एकत्र हों तो भी उक्त फल समझना

चाहिए। अथवा कुछ ग्रह मीन में हों और शेष कर्क में तथा लग्न एवं लग्नेश पर भी प्रभाव रखें तो विशेष प्रभावशाली माने जाएंगे। कदाचित् यह योग लग्न में अधिक प्रभावशाली होगा। श्लोक में प्रयुक्त **'अंगे सौख्येन हीनः'** श्लोकांश में से 'अंगे' शब्द का सम्बन्ध यदि द्वितीय चरण से मानें तो अंगे अर्थात् लग्ने (लग्न में) अर्थ लगता है। अथवा 'अंगे' शब्द का सम्बन्ध **'सौख्येन'** से मानें तो **'शरीर के सुख की कमी'** ऐसा अर्थ सुलभ है। दोनों ही अर्थ योग्य हो सकते हैं।

असाध्य रोग—गुप्त रोग—व्रण रोग (कैंसर) :

दृष्टश्चेद्वक्त्रशोफी त्वथ खलसहितो मीनकर्कालिभावा
लूताकारश्चिरं स्यात्परमगदकरः कुष्ठ एवं नराणाम्।
रिःफस्थानस्थितश्चेद्विबुधपतिगुरुर्गुप्तरोगी नितान्तं
भूमीमार्तण्डपुत्रौ व्ययभवनगतौ शत्रुगौ वा व्रणी स्यात्॥६॥

यदि बृहस्पति या शुक्र षष्ठेश होकर लग्न में क्रूर ग्रहों से दृष्ट हों तो मनुष्य मुखरोगी (मुख में सूजन, घाव आदि) होता है।

मीन, कर्क एवं वृश्चिक राशि में कुण्डली में सारे क्रूर ग्रह हों, अर्थात् ये तीनों राशियां पापाक्रान्त हों तो मनुष्य को बड़ा रोग अथवा मकड़ी के आकार का दीर्घकालीन रोग (कैंसर ?) अथवा असाध्य कुष्ठादि रोग होता है।

द्वादश स्थान में यदि बृहस्पति हो तो मनुष्यों को गुप्त रोग देता है।

मंगल और शनि यदि षष्ठ या द्वादश स्थान में स्थित हों तो मनुष्य व्रणी अर्थात् घाव वाला (कैंसर) होता है।

मुखरोग का योग पिछले श्लोक से सम्बन्धित है। श्लोक के द्वितीय चरण में किसी ऐसे असाध्य रोग की स्थिति का संकेत है, जो परम रोग अर्थात् महारोग (ला-इलाज) होता है। प्राचीन काल में जब टी० बी० असाध्य होती थी तो उसे महारोग, राजरोग, राजयक्ष्मा कहा जाता था। आजकल वह साध्य है, अतः आधुनिक महारोग कैंसर ही हो सकता है। फिर लूता अर्थात् मकड़ी के जाले की समानता बता कर कैंसर की ओर स्पष्ट संकेत कर दिया गया है। अथवा असाध्य कुष्ठ भी इस योग में हो सकता है। यक्ष्म शब्द संस्कृत में 'घाव' का वाचक है।

'यक्ष्म' शब्द से ही भाषिक यात्रा व संरचना के आधार पर 'जख्म' बना है। अतः ऐसा असाध्य फोड़ा (Tumour) जख्म जो चिरकाल तक रहता है तथा परम रोगों की श्रेणी में आता है, वैसा आशय स्पष्ट है।

चतुर्थ चरण में बताया गया योग टी०वी० या कैंसर का ही है। व्रण या विद्रधि शब्द भी अन्दरूनी घाव का ही वाचक है। आयुर्वेद में अन्दरूनी घाव को **'विद्रधि'** कहा गया है। हमारे विचार से द्वादश स्थान में मंगल शनि हों तो हड्डी के बड़े रोग अथवा लंगडापन भी सम्भावित होता है। इसका विचार भी कर लेना चाहिए।

लंगड़ापन एवं बुद्धिहीनता

मेषे मीने कुलीरे तदनु च मकरे वृश्चिके मन्दचन्द्रौ
स्यातां क्रूरान्वितौ चेन्नवमभवनगौ मानवः स्याच्च खञ्जः।
लग्नस्थं पश्यतीन्दुं दिनमणितनयं भूमिजो द्यूनदृष्ट्या
बुद्ध्या हीनो नरः स्यादिनविधुविवरे भूमिजश्चेत्तथैव ।।१०।।

जन्म लग्न से नवम स्थान में शनि एवं चन्द्रमा एकत्र, क्रूरग्रहों से से युक्त होकर स्थित हों और नवम भाव में मेष, मीन कर्क, मकर, वृश्चिक राशि हों तो मनुष्य के पैर में विकृति (लंगडापन) होता है।

यदि लग्न में स्थित शनि एवं चन्द्रमा को सप्तम दृष्टि से मंगल देखता हो अर्थात् शनि चन्द्र दोनों लग्न में स्थित हों और मंगल सप्तम भाव में स्थित हो तो मनुष्य बुद्धिहीन होता है।

अथवा मंगल की स्थिति सूर्य एवं चन्द्रमा की कर्तरी में हो अर्थात् मंगल से द्वितीय एवं द्वादश भाव में सूर्य, चन्द्रमा हों तो भी मनुष्य बुद्धिहीन होता है।

शनि का स्वरूप ही ज्योतिष शास्त्र में लंगड़ा माना गया है। नवम भाव में काल पुरुष की जांघ की स्थिति होती है। मकर एवं मीन राशि में घुटना एवं पैर स्थित है। अब शनि जो स्वयं लंगड़ापन कारक है और चन्द्रमा शरीरांग की पुष्टि का विधायक है। शनि की युति व अन्य क्रूर ग्रहों से आक्रान्त होने के कारण चन्द्रमा अर्थात् शरीरांग की पुष्टि को हानि पहुंचेगी। नवम भाव में स्थित शनि व चन्द्र जांघ को प्रभावित करेंगे। शनि तृतीय पूर्ण दृष्टि से एकादश भाव (पिंडली) को भी देखकर प्रभावित करेगा। यदि वहां अन्य पापग्रह, मंगल हुआ तो द्वादश

भाव को भी प्रभावित करेगा। राशियों में मकर व मीन तो स्वयं पैर के अंगों की प्रतिनिधि हैं। मेष व वृश्चिक राशि मंगल राशि (क्रूर राशि) हैं और इनमें शनि, जो प्रमुख योगकारक है वह शत्रु क्षेत्री व नीचस्थ रहेगा। अतः वह अधिक क्षुब्ध होगा। कर्क राशि का ग्रहण मंगल की नीच राशि के कारण कदाचित् किया गया है।

अतः उक्त योगों में पैर में विकार युक्ति युक्त है। जातकालंकार के इस योग का आंशिक समर्थन **'जैमिनिसूत्र'** से भी होता है। जैमिनिसूत्र के तृतीय अध्याय, तृतीय पाद, सूत्र १०६ देखें।

(i) **धनमुखाभ्यां पादरोगः।**

(**जैमिनिसूत्र** ३. ३. १०६)

जैमिनि मुनि के इस प्रसंग का आशय यह है कि सूर्य व शनि से द्वितीय राशियां यदि मेष (मुख) या धन (नवम राशि धनु) पड़े अथवा लग्न से द्विर्द्वादश में सूर्य शनि हो और लग्न में मेष, धनु राशि हो तो पैरों में विकार होता है। या लग्न एवं नवम भाव में ये राशियां हों तो भी उक्त फल होगा।

जैमिनि सूत्र शान्तिप्रिय भाष्य के सम्बद्ध प्रकरण में हमने उदाहरण द्वारा विषय एवं नियम को स्पष्ट किया है।

यहां आवश्यक मात्र बता रहे हैं। जैमिनि मुनि का आदेश है कि द्वितीयादि भावों का निर्णय करने के लिए यदि विषम राशि हो तो क्रम से व सम राशि हो तो व्युत्क्रम (विपरीत क्रम) से गणना होगी (देखें जै० सू० ३.३.१०५)

अतः पैर रोग के इस योग में सूर्य या शनि से द्वितीय भाव में धनु व मेष की स्थिति से उक्त फल माना है। एतदर्थ शनि व सूर्य मकर राशि में धनु, वृष, मेष में रहेंगे। अतः शनि पापयुक्त होगा। इन्हीं राशियों का ग्रहण प्रायः जातकालंकार में भी किया गया है। लग्न या नवम भाव में उक्त राशि होने पर पापाक्रान्तत्व की स्थिति में जैमिनि ने भी पाद रोग माना है।

बुद्धिमत्ता योग :

प्रालेयांशौ तनुस्थे गगनसदनगे साधिकारेऽर्कसूनौ
दृष्टेऽस्मिन् कामदृष्ट्या हिमकिरणभुवा बुद्धियुङ् मानवः स्यात्।

पृथ्वीसूनुं मृगांकं तनुनिलयगतं पूर्णदृष्ट्येन्दुसूनुः
पश्येच्चेद्बुद्धिहीनस्त्वथ शशितनुपौ भूभुवा पीडितो वा ॥११॥

जिसके जन्म समय चन्द्रमा लग्न में हो और विशेष बली या उच्च कोण निजादि वर्गगत शनि दशम स्थान में हो और बुध चतुर्थ स्थान में बैठकर शनि को पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो मनुष्य बहुत बुद्धिमान् होता है।

लग्न स्थान में स्थित मंगल और चन्द्रमा को, बुध पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो मनुष्य बुद्धिहीन होता है। अथवा लग्नेश व चन्द्रमा, मंगल से पीड़ित हों तो बुद्धिहीनता योग होता है।

बुध का सीधा सम्बन्ध बुद्धि एवं चेतना से है। इसके अतिरिक्त बुध कल्पना शक्ति व ग्रहण शक्ति का भी परिचायक है। इसके विपरीत शनि जड़ता व मूर्खता का प्रतिनिधि है। चन्द्रमा भी बुद्धि का कारक है। अतः चतुर्थ में दिग्बली बुध, लग्न में चन्द्रमा और बुध दृष्ट शनि दशम में बुद्धिमत्ता का योग बनाएगा।

इसके विपरीत मंगल काम, क्रोध, दुःशीलता, उग्रता का कारक है। जब चन्द्र सहित मंगल लग्न में होगा तो व्यक्ति में उक्त बातें प्रबल रहेंगी। ऐसी स्थिति में बुध सप्तमस्थ होकर भी विशेष कुछ नहीं कर पाएगा, ऐसा ग्रन्थकार का आशय है। कारकत्व के लिए विस्तारपूर्वक जानने हेतु हमारी '**भावमंजरी प्रणवाख्या**' का कारक प्रकरण अथवा **उत्तर कालामृत** का सम्बद्ध भाग देखें।

आशय यह है कि बुध, चन्द्रमा, लग्न, लग्नेश पर जितना अधिक मंगल का प्रभाव होगा अथवा अन्य पापग्रह का प्रभाव होगा, उतनी ही बुद्धिहीनता प्रकट होगी।

हृदय रोगः—कम्पन व पित्त रोग :

लग्नस्थे रौहिणेये तदनु रविशनी क्रूरदृष्टौ रिपुस्था
वेकर्क्षे चैकभागे भवति गतमतिर्दृष्टिहीनौ शुभानाम्।
तिग्मांशौ वैरिनाथे खलविहगयुते तुर्यगे सूर्यसूनौ
हृद्रोगी वाक्पतौ वा भवति हृदि नरः कृष्णपित्ती सकम्पः ॥१२॥

जिसके जन्म लग्न में बुध स्थित हो, सूर्य व शनि साथ हो, क्रूर ग्रह से दृष्ट होकर षष्ठ स्थान में अथवा एक राशि में अथवा एक चक्रार्ध में

अथवा एक नवांश में हों तो मनुष्य नितान्त बुद्धिहीन होता है। इस स्थिति में यदि शुभग्रह की दृष्टि रवि, शनि पर न हो तो उक्त फल उत्कट अथवा मध्यम रहेगा। सूर्य यदि षष्ठेश हो अर्थात् मीन लग्न में जन्म हो और सूर्य दुष्ट ग्रह से युक्त होकर चतुर्थ स्थान में हो तो मनुष्य को हृदय रोग होता है।

अथवा षष्ठेश शनि चतुर्थ में पापयुक्त हो तो भी मनुष्य हृदय रोगी होता है।

यदि बृहस्पति षष्ठेश होकर चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो मनुष्य को पित्त अथवा कम्पन रहता है।

अथवा उक्त योग में दुष्ट लोगों से पीड़ित होने के कारण हृदय से भयाक्रान्त रहता है।

इस श्लोक का शब्द विन्यास कुछ इस प्रकार है कि कई अर्थ लिये जा सकते हैं। **'रिपुस्थौ'** शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—शत्रु की राशि में स्थित या षष्ठ में स्थित। **'एकभागे'** से तात्पर्य 'एक अंश अथवा एक नवांश अथवा एक भाग पूर्वार्ध परार्ध या दृश्यार्ध अदृश्यार्ध भी हो सकता है।

तृतीय चरण का अर्थ ऐसा भी हो सकता है। षष्ठेश सूर्य कहीं भी क्रूर युक्त हो और शनि चतुर्थ में स्थित हो तो हृदय रोग होता है। अथवा ये दो योग भी हो सकते हैं।

इसी प्रकार **'सकम्प'** शब्द का सम्बन्ध अगले श्लोक तक ले लें तो **'दुष्टों से भयाकुल'** अर्थ भी स्पष्ट गृहीत हो सकेगा।

प्रस्तुत कुण्डली में हृदय स्थान चतुर्थ में अकेला शनि ही है—
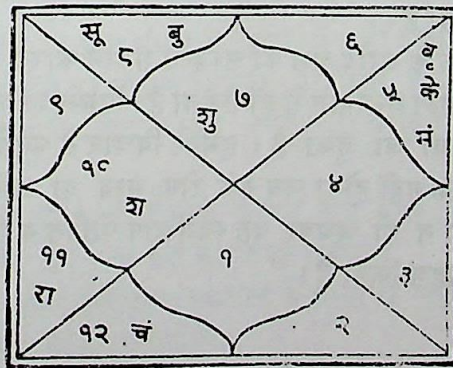
हमारे विचार से यहां शनि चतुर्थ हृदय स्थान में स्थित है। वह शनि हृदय रोग कारक राशि कर्क को एवं षष्ठ रोगस्थान को एवं लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखता है। साथ ही षष्ठेश गुरु पाप पीड़ित है। अतः इन्हें रोगोत्पत्ति होने के योग हैं। जातकालंकार के उक्त श्लोक में शनि अकेला भी चतुर्थ में बैठकर हृदय रोग कर सकता है, यह सम्भावना हमने प्रकट की है। उसकी पुष्टि इस कुण्डली में होती है। इन्हें हृदय रोग के कारण विदेश में जाकर हृदय का आपरेशन कराना पड़ा था। उस समय इनकी अवस्था लगभग ४८ वर्ष थी। अब ये सामान्य जीवन व्यतीत कर रहे हैं। लग्न वर्गोत्तम एवं लग्नेश शुभग्रह लग्न में बैठकर उत्तम योग बनाते हैं, अतः आयु विस्तार समुचित होने से कदाचित् समय पर ही बीमारी को वश में कर लिया गया।

हृदय रोग—दुःखी होने के योग :

दुष्टैर्वा पीडितः सन्नथ कुजरविजौ वाक्पतिर्बन्धु संस्थो
हृद्रोगः स्यान्नराणां व्रण इह नियतं क्लेशकारी शरीरे।
पातालस्थो महीजस्तनयनिलयगाः सूर्यवित्सैंहिकेया
रन्ध्रस्थो भानुपुत्रो यदि जनुषि तदा स्यान्नरो दुःखभागी ।।१३।।

मंगल व शनि अथवा दुष्ट ग्रह से पीड़ित बृहस्पति चतुर्थ स्थान में हो तो मनुष्य को हृदय रोग एवं हृदय प्रदेश में घाव लगता है। वह घाव अत्यन्त कष्टकर होता है।

यदि मंगल चतुर्थ स्थान में स्थित हो और सूर्य, बुध एवं राहु पंचम स्थान में स्थित हों और शनि अष्टम में गया हो तो मनुष्य जीवन भर दुःखभागी होता है।

इस श्लोक के आदि अंश का सम्बन्ध समान कारक (Case) होने से **'वाक्पतिः'** अर्थात् बृहस्पति से हो सकता है। पिछले श्लोक से भी इसका सम्बन्ध बताया जा चुका है। हमारे विचार से चतुर्थ वृहस्पति रोग कारक तब तक नहीं होगा जब तक रोग भाव या भावेश से उसका कोई सम्बन्ध न हो अथवा वह स्वयं पाप पीड़ित न हो। अतः हमने यहां इसका ग्रहण किया है।

कायर एवं लड़ाकू स्वभाव :

लग्नं पश्येन्निजर्क्षे यदि धरणिसुतः संस्थितः कातरः स्या
च्छायासूनुर्नभस्थो यदि निशि जननं तद्वदत्रापि वाच्यम्।
मूर्तौ भूमीतनूजे स्वजनकलहकृद् द्यूनगे स्वाधिकारा
द्धीने भौमे वपुष्मान् परमयुधिरतस्तीक्ष्णभावश्च नूनम्॥१४॥

जिसके जन्म समय मंगल स्वक्षेत्र में स्थित होकर लग्न को देखता हो तो मनुष्य कातर स्वभाव वाला होता है।

यदि रात्रि में जन्म हो और शनि दशम स्थान में स्थित हो तो भी मनुष्य कायर स्वभाव वाला होता है।

लग्न में मंगल होने पर व्यक्ति स्वजनों से कलह करता है।

यदि सप्तम स्थान में मंगल निज राशि होरा द्रेष्काणादि से रहित हो तो मनुष्य स्वस्थ शरीर वाला, युद्ध या कलह से प्रेम करने वाला और तीव्र स्वभाव वाला होता है।

मंगल तृतीय भाव का कारक है। यह पराक्रम एवं युद्ध कारक भी है। शनि व मंगल दोनों ही ग्रह उत्पातप्रिय हैं। मंगल का प्रभाव यदि लग्न पर हो तो वह उग्र स्वभाव वाला, भीषण वक्ता, तीक्ष्ण बुद्धि आदि होना चाहिए। लेकिन ग्रन्थकार कहते हैं कि निज राशि में बैठकर मंगल लग्न को देखे तो जातक कातर अर्थात् डरपोक होता है। मंगल की दृष्टि ४, ७, ८ भावों पर रहती है। अर्थ यह निकला कि जिसको कुण्डली में सप्तम भाव, दशम भाव एवं षष्ठ भाव में मंगल हो तो मनुष्य कायर होगा। क्योंकि ६,७,१० भावों में बैठकर ही मंगल लग्न को देख सकेगा। इस बात से हम सहमत नहीं हैं। सर्वप्रथम षष्ठ भाव के मंगल को लें। षष्ठगत मंगल के विषय में सभी प्राचीन आचार्यों का मत है कि ऐसा होने पर जातक विजयी, पराक्रमी, शत्रुहन्ता होता है। चमत्कार चिन्तामणि, खेट कौतुक, सारावली आदि में ऐसा ही माना गया है।

अब जो शत्रुजित् है, जिसके सामने शत्रु ठहर नहीं सकते, जो विजयी होता है, भला वह कैसे कायर हो सकेगा।

सप्तम मंगल स्त्री नाशक, व्यापार के प्रसंग से परदेशवास कराने वाला, शत्रुओं से पीड़ित करता है।

दशमस्थ मंगल की तो फलित शास्त्र में बड़ी प्रशंसा की गई है। अतः सप्तम मंगल के विषय में उक्त जातकालंकारोक्त फल घटित हो सकता है। अतः हम समझते हैं कि गणेश कवि का आशय केवल मंगल की सप्तम दृष्टि से ही होगा। लेकिन उन्होंने इसे स्पष्ट नहीं किया, यह कमी ही मानी जाएगी। जबकि वे प्रायः 'द्यूनदृष्टि', 'कामदृष्टि' आदि शब्दों से इसे स्पष्ट करने की प्रवृत्ति रखते हैं। लेकिन चतुर्थ चरण में सप्तमस्थ मंगल का फल बताया है। अतः पुस्तक का यह योग अंशतः ही सत्य सिद्ध होता है।

दशमस्थ शनि के विषय में भी हम सहमत नहीं हैं। ऐसा व्यक्ति देर से उन्नति करता है। नौकरी आदि करता है। अतः पाठक स्वयं इसे परखें।

शरीराकृति का विचार :

पश्येतां कामदृष्ट्या धरणि विधुसुतौ चेन्मिथः स्यात्तदानी-
मुच्चाकारोऽथ चन्द्रं शनिरविमहिजाश्चेत् प्रपश्यन्ति शीतः।
क्षीणे प्रालेयभानौ धरणिजसहिते पापभूमिः खरः
स्यान्मूर्तिस्थो द्यूनदृष्ट्या हिमकरतनयो वासवेज्यं प्रपश्येत् ॥१५॥

यदि बुध एवं चन्द्रमा एक-दूसरे से सातवें स्थान में हों अर्थात् समसप्तक में हों तो मनुष्य का शरीर ऊंचा होता है।

यदि चन्द्रमा पर सूर्य, मंगल, शनि की दृष्टि हो तो मनुष्य के शरीर में शीत का प्रकोप अधिक होता है।

यदि क्षीण चन्द्रमा मंगल से युक्त हो तो मनुष्य कठोर एवं खुरदरे स्वभाव वाला और कठोर कार्य करने वाला होता है।

यदि लग्नस्थ बुध व सप्तमस्थ गुरु हो तो मनुष्य हास्य में आसक्त अर्थात् विनोदी स्वभाव वाला होता है। (अग्रिम श्लोक से सम्बन्ध है)।

बुध व मंगल का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध होने पर गणेश कवि ने शरीर के आकार को ऊंचा माना है। अर्थात् व्यक्ति ऊंचे कद का होता है।

बुध व मंगल इस स्थिति में किसी भी भाव में हो सकते हैं। चन्द्रमा पर सूर्य, मंगल व शनि की दृष्टि होने पर मनुष्य का शरीर जल्दी सर्दी

पकड़ने वाला होता है। संस्कृत टीकाकार पं० हरभानु शुक्ल ने यहां लिखा है—

'अथ शनिरविभौमाश्चन्द्रं पश्यन्ति तदा जातः शीतस्वभावः स्यात्। शीतलत्वं जडत्वं मूर्खत्वमित्यर्थः।'

मूल श्लोक में 'शीतः' शब्द आया है। यह जातक का विशेषण है। तव अर्थ यह है कि मनुष्य शीत अर्थात् ठण्डा हो। ठण्डा होने से तात्पर्य शरीर ठण्डा या मन ठण्डा हो सकता है। अनुभव में इस स्थिति में मनुष्य क्रोधी व अशान्त स्वभाव वाला ही देखा गया है। हां, चन्द्रमा पर क्रूर प्रभाव उसे सर्दी, जुकाम व इनसे होने वाले कष्टों को देता है। ऐसा हमने स्वयं अनुभव किया है।

क्षीण चन्द्रमा व मंगल का योग व्यक्ति को हताशा, झुंझलाहट, चिड़चिड़ापन और परोन्नति से ईर्ष्या वाला बनाता है। ऐसा व्यक्ति अपने लाभ व दूसरों की हानि के लिए नीच कार्य भी कर सकता है।

चतुर्थ चरण में बताया गया योग अगले श्लोक से सम्वद्ध है। हमने पाया है कि शुभ ग्रह वुध, गुरु, शुक्र व बली चन्द्र में से दो ग्रह भी आपस में पूर्ण दृष्टि से देखते हैं तो ऐसे व्यक्ति की हास्यप्रियता खूब होती है। ग्रन्थकार केवल वुध द वृहस्पति से उक्त फल मानते हैं, वह भी लग्नस्थ होने पर। लेकिन हमारे विचार से ये योग किसी भी स्थान में हों, कमोवेश अपना प्रभाव दिखाते हैं। इस योग में हमारे विचार से सभी शुभ ग्रहों का ग्रहण किया जा सकता है। ऐसा व्यक्ति निरन्तर धनागम वाला, सुरुचिपूर्ण व हास्य की समझ रखने वाला होता है। यदि पंचम स्थान अच्छा हो तो ये हास्य व्यंग्य (Satire) लिखने में भी निष्णात होते हैं। महात्मा गांधी की कुण्डली में उक्त योग स्पष्ट रूप से पड़ा है—
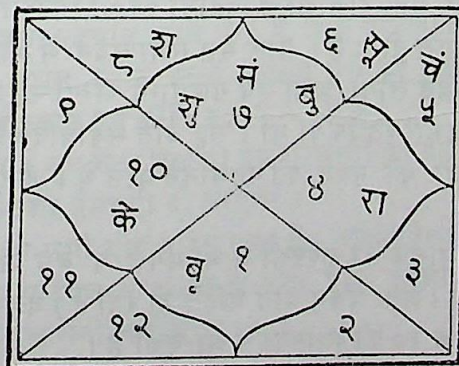
लग्नस्थ बुध, लग्नेश शुक्र के साथ है और सप्तमस्थ गुरु को पूर्ण दृष्टि से देखता है। अतः योग घटित हुआ। महात्मा जी की विनोद-प्रियता एवं हाजिर जवाबी की एक अलग ही रंगत थी, ऐसा जानकारों का कहना है। अगले श्लोक में बताए गए योगों का भी प्रत्यक्ष इस कुण्डली में है।

वाक्पटुता एवं राजप्रियता :

हास्यासक्तः सभौमे हिमकरतनये स्याच्छुभर्क्षे कुजज्ञौ
मन्दर्क्षे वाऽर्कदृष्टौ नरपतिविदुषां रञ्जने कोविदः स्यात्।
पश्येत्काव्यं सितांशुर्व्ययविलयरिपुस्थानगो विस्मयालुः
क्षिप्रं वाक्स्फूर्तिमान् स्यात् कुजबुधशशिनो वीर्यवत्खेटदृष्टाः ।।१६।।

यदि मंगल के साथ बुध किसी शुभ ग्रह की राशि में स्थित हो तो मनुष्य राजाओं को अनुकूल बनाने वाला बुद्धिमान् होता है।

यदि मंगल एवं बुध दोनों शनि की राशि में हों अथवा मंगल व बुध पर सूर्य की दृष्टि हो तो मनुष्य अपनी बुद्धिमत्ता से राजाओं एवं विद्वानों को प्रभावित करता है और उन्हें प्रसन्नता देता है।

यदि ६, ८, १२ भावों में स्थित चन्द्रमा शुक्र को देखता हो तो मनुष्य भ्रान्त बुद्धि अर्थात् विस्मित बुद्धि चंचल मति होता है।

यदि मंगल, बुध और चन्द्रमा को कोई बली ग्रह देखता हो तो मनुष्य त्वरित वक्ता और स्फूर्तिमय अर्थात् चुस्त होता है।

पूर्वोद्धृत महात्मा गांधी की कुण्डली में मंगल व बुध शुभ ग्रह की राशि में एकत्र हैं, अतः राजाओं व विद्वानों को भी विद्वत्ता से प्रभावित करने का गुण प्राप्त होता है। गोल मेज सभा लंदन में और उससे पूर्व अफ्रीका में बड़े-बड़े लोगों, जजों एवं गणमान्य लोगों को अपने तर्कों से महात्मा जी ने प्रभावित किया था। यह बात सर्वविदित है। वे कुशल वक्ता एवं जनता की नब्ज को पहचानने वाले थे। अतः योग घटित होता है।

आचार्य रामानुज की कुण्डली में भी मंगल व बुध मीन राशि में नवम स्थान में हैं। अतः प्रथम योग घटित हो रहा है। यह कुण्डली पीछे भावाध्याय श्लोक ३७ की व्याख्या में आ चुकी है।

परनारीलोलुपता के योग :

शुक्रज्ञौ द्यूनयातौ गगनविलयगौ मानवः पुंश्चलः स्यात्
कामाज्ञामन्दिरस्थौ कविधरणिसुतौ तद्वदाज्ञाम्बुयातौ।
काव्यारौ तद्वदिन्दोर्नभसि रविसुतादास्फुजिन्नीरयायी
तद्वत्कामास्पदस्था बुधसितशनयः स्वर्क्षगे भार्गवे हि॥१७॥

इन योगों में मनुष्य परस्त्रीगामी होता है—

शुक्र व बुध दोनों एक साथ सप्तम, अष्टम या दशम स्थान में हों।

शुक्र व मंगल सप्तम या दशम स्थान में स्थित हों।

अथवा शुक्र व मंगल दशम और चतुर्थ स्थान में हों।

यदि चन्द्रमा से दशम स्थान में या शनि से चतुर्थ स्थान में शुक्र स्थित हो तो भी मनुष्य व्यभिचारी होता है।

यदि शुक्र निज राशि में स्थित हो और बुध, शुक्र, शनि तीनों किसी भी प्रकार से सप्तम या दशम स्थान में हों तो भी मनुष्य व्यभिचारी होता है।

मनुष्य के काम सम्बन्धों का विचार सप्तम भाव से करना चाहिए। अतः उक्त योगों में सर्वत्र सप्तम भाव का ग्रहण है। अष्टम स्थान गुप्त बातों और पाप का स्थान है। अतः अष्टम भी इस सन्दर्भ में विचारणीय हुआ। दशम स्थान अपने मित्रों, बन्धु-बान्धवों की स्त्रियों का है क्योंकि वह चतुर्थ से सप्तम (स्त्री) स्थान है। अपनी स्त्री की सखियों सहेलियों का विचार भी दशम से ही होता है। सप्तम स्थान का वह मित्र स्थान है। गुरु स्थान (नवम) से द्वितीय होने के कारण वह गुरु का कुटुम्ब स्थान है। प्रायः मनुष्य के गुप्त व अवैध सम्बन्ध जान-पहचान वाले घरों में, मित्र मण्डली में या पड़ौस में होते हैं। अतः दशम स्थान इसमें केन्द्रीय भूमिका रखता है। फिर दशम स्थान कर्म स्थान एवं कीर्ति का स्थान भी है।

शुक्र एवं बुध में से शुक्र तो प्रेम सम्बन्धों का ग्रह है ही, बुध भी शुक्र के साथ बैठकर वैसा ही हो जाएगा।

प्रायः ये सभी योग युक्ति युक्त हैं। लेकिन ऐसा फल कहने से पहले व्यक्ति का परिवेश, पृष्ठभूमि व अन्य बुद्धि विद्या आदि स्थानों की दृढ़ता भी देख लेनी चाहिए।

अपयश योग एवं नपुंसकता :

प्रालेयांशोः सिताद्वा दिनमणितनयस्तत्पुरोभागवर्ती मूर्तौ
चेच्चन्द्रशुक्रौ यदि तरणिसुतं पश्यतश्चायशाः स्यात्।
शेफच्छेदो नराणामथ तपनसुते भूमिकेन्द्रेऽर्कयुक्ते
दृष्टे काव्योडुपाभ्यां यदि दिवसपतेश्चोपरागोऽत्र तद्वत् ।।१८।।

जिस व्यक्ति की कुण्डली में शुक्र या चन्द्रमा से शनि अगले भाव में हो या उसी राशि में आगे के अंशों में हो तो मनुष्य अपकीर्ति से युक्त होता है।

यदि लग्न में चन्द्रमा व शुक्र हों और वे शनि को देखते हों तो भी मनुष्य अपयश का भागी होता है।

यदि लग्न में शनि स्थित हो और साथ में सूर्य अवश्य हो। इस प्रकार से स्थित शनि व सूर्य को शुक्र व चन्द्रमा देखें या योग करें तो मनुष्य का प्रजननांग (लिंग) काटे जाने का योग होता है। इस योग में पूर्ववत् अपकीर्ति भी समझनी चाहिए।

'भाग' शब्द से यहां फिर पूर्ववत् सन्देह होता है। भाग अर्थात् अंश या पूर्वापरार्ध या दृश्यादृश्यार्ध तो युक्तियुक्त है। लेकिन प्राचीन संस्कृत टीकाकार पं० शुक्ल ने भाग शब्द से भाव का ही एक मात्र अर्थ ग्रहण किया है।

'चन्द्रात् शुक्राद् वा शनिः तत्पुरोभागवर्ती तदग्रिमभावे स्थितः।'

(पं० हरभानु)

अतः हमारे विचार से भाग शब्द से यहां मुख्यतः 'अंश' या नवांश का ग्रहण होना चाहिए। गौण रूप से भाव का अर्थ लेकर परीक्षा कर सकते हैं।

द्वितीय योग में गणेश कवि ने फिर कवित्व की शिथिलता का परिचय दिया है। लग्नस्थ चन्द्र, शुक्र हों, शनि को देखते हों तो शनि सप्तम स्थान में ही होगा। क्योंकि चन्द्रमा व शुक्र की सप्तम दृष्टि ही पूर्ण होती है। योग विचार में हमारा अनुभव है कि पूर्ण दृष्टि ही विचारणीय होनी चाहिए। तब सीधी-सी बात हुई है कि चन्द्रमा या शुक्र से सप्तम स्थान में शनि हो तो भी मनुष्य अपयश पाता है। इतनी-सी बात में पूरी लाइन खपा दी है और बात फिर भी अस्पष्ट ही रहीं।

तृतीय चरण में लिंगच्छेदन का योग बताया गया है। वहां भूमि

केन्द्र शब्द का अर्थ लग्न भाव है। सूर्य व शनि लग्न में वैठकर चन्द्रमा या शुक्र से युक्त या दृष्ट हों और जन्मसमय सूर्य ग्रहण रहा हो तो मनुष्य अपकीर्ति से युक्त तो होता ही है, साथ ही उसका लिंग काटे जाने का भी योग होता है।

इस विषय में पाठकों को विशेष व्याख्या न दे सकने का खेद है। क्योंकि आज तक कोई हिजड़ा हमारे पास अपना भविष्यफल पूछने नहीं आया है। वैसे यह एक खोज का विषय हो सकता है। आजकल हिचड़े वनाए जाते हैं. ऐसा सुनने में आता है। अभी १९८८ के किसी मास में दिल्ली के खैवरपास क्षेत्र की झाड़ियों में एक युवक बेहोशी की हालत में मिला था। पुलिस को दिये बयान के अनुसार हिजड़ों ने उसका लिंगच्छेद किया था, लेकिन रक्त स्राव बन्द न होने पर वे घबराकर उसे वहां फेंक गए थे। अस्तु, लिंगच्छेदन किसी दुर्घटनावश या किन्हीं शल्य चिकित्सकीय कारणों से भी हो सकता है। आजकल लिंग परिवर्तन भी प्रचारित किया जा रहा है। हो सकता है, इस योग में व्यक्ति पुरुष व स्त्री की विशेषताओं से साथ-साथ युक्त होता हो। खोजी पाठक परीक्षा करें।

अल्प कामशक्ति के योग :

याते वक्रग्रहर्क्षे जनुषि भृगुसुते मानवस्तोषदायी
सीमन्तिन्यारतः स्यान्न खलु मदनगं भार्गवं लग्ननाथः।
पश्येत्स्वीयालयस्थो यदि रहसि तदा कामिनीतोषदाता
न स्यादेवं हिमांशुर्दिनकरसुतयुग् भौमतः खे सुखे वा ॥१९॥

जिसके जन्म समय शुक्र किसी वक्री ग्रह की राशि में हो तो मनुष्य सम्भोग के समय स्त्री को सन्तुष्ट नहीं कर पाता। इसी प्रकार लग्नस्थ लग्नेश एवं सप्तमस्थ शुक्र हो तो भी वह रति क्रिया में सन्तुष्ट नहीं करता है।

यदि चन्द्रमा व शनि साथ-साथ मंगल से चतुर्थ या दशम स्थान में स्थित हों तो भी मनुष्य सन्तोषप्रद सम्भोग नहीं कर पाता है।

इस विषय में 'ज्योतिस्तत्त्व' में भी कहा है—

वर्कर्क्षस्थे भार्गवे चोदयेशे,
काये काव्यः कान्तभे किं कुसूनोः।
मध्ये मित्रे मन्दयुक्तो मृगांको,
ना कामिन्या नो रतेस्तोषदायी ॥'
(सप्तमभावप्रकरण पृ० ८७२)

अतः हमने उक्त सभी योगों में रति क्षमता में न्यूनता दिखाई है। कुछ टीकाकारों ने यहां कुछ योग सुवीर्यत्व के भी मानकर अर्थ किया है।

हमारे विचार से शुक्र व सप्तम स्थान मनुष्य की काम शक्ति के विषय में प्रतिनिधिभूत है। शुक्र वक्रीग्रह की राशि में होने से इस विषय में अपना हीन प्रभाव दिखाएगा। लेकिन लग्न में लग्नेश और सप्तम में शुक्र होने से व्यक्ति अल्प वीर्य हो तो इसमें कुछ विशेष युक्ति नहीं दिखती है। इस योग में तो व्यक्ति बहुस्त्रीगामी एवं व्यभिचारी होता है। तब ऐसी स्थिति में वह अल्पवीर्य कैसे होगा। पीछे श्लोक १७ में बताया है कि चन्द्रमा से दशम में शुक्र या शनि से चतुर्थ में शुक्र हो तो मनुष्य व्यभिचारी होता है। कदाचित् मंगल से चतुर्थ या दशम में चन्द्र शनि होने पर जो अल्पवीर्यत्व बताया गया है, कदाचित् वह बहुत सम्भोग से ही कुछ समय बाद उत्पन्न होता हो। हमारे विचार से शुक्र सप्तम व लग्नस्थ लग्नेश वाले योग में विशेष निर्वीयत्व होता है या नहीं, यह परीक्षणीय है। शेष सभी योग निर्वीयत्व या अल्पवीर्यत्व के ही हैं।

वास्तव में शंका की जड़ स्वयं गणेश कवि ही हैं। उन्होंने अल्पाक्षर कवि होने के कारण 'नञ्' का अटपटा व शंकास्पद प्रयोग किया है। अतः हमने बहुमत द्वारा मान्य अर्थ का ही यहां ग्रहण किया है।

बहुकाम व अल्पकाम योग :

क्षोणीपुत्रेण युक्तः प्रथमसुरगुरुर्लग्नतः षष्ठपोऽयं
कामाधिक्यं नराणां जनयति नियतं पापदृष्टो विशेषात्।
काव्ये स्वीयालयस्थे तदनु मिथुनगे कामवान् मानवः स्यान्-
मूर्तौ सप्ताश्वसूनौ धनुषि च वृषभे चेत्पुमानल्पकामः ॥२०॥

जिसकी जन्म कुण्डली में षष्ठ स्थान में शुक्र की राशि पड़े और वह षष्ठेश शुक्र कहीं भी मंगल से युक्त हो तो मनुष्य अति कामुक होता है।

यदि वह शुक्र अन्य पापग्रह से दृष्ट भी हो तो फिर विशेष कामुकता होती है।

यदि शुक्र स्वक्षेत्री हो या मिथुन राशि में हो तो भी मनुष्य प्रचुर काम शक्ति से युक्त होता है।

यदि लग्न में शनि हो और लग्न में 'धनु या वृष राशि हो तो पुरुष अल्पकाम होता है।

शुक्र वीर्य एवं कामेच्छा का प्रतिनिधि है तो मंगल अग्नि प्रधान व पराक्रम प्रधान ग्रह है। दोनों का एकत्र होना काम सम्बन्धी अग्नि को अधिक प्रज्ज्वलित करेगा। यदि पापदृष्टि भी हो तो फिर क्या कहना। लेकिन शुक्र यदि किसी पाप राशि में या स्वराशि में बैठकर मंगल से पूर्णदृष्ट भी हो तो भी उक्त फल हमने होते देखा है। ऐसे योगों में व्यक्ति कौतुकपूर्ण रतिक्रिया में ही विश्वास रखता है।

मिथुन का तद्धित रूप ही 'मैथुन' होता है। अतः मिथुन राशि में शुक्र की स्थिति भी कामप्रियता को बढ़ाने वाली है। ऐसा व्यक्ति बहुत शौकीन, नफासत व नजाकत पसन्द होता है। इसकी मति लालित्यपूर्ण चीजों में ही रमती है।

धनु या वृष लग्न में शनि स्थित हो तो स्वयं शनि मन्दता का द्योतक है। शनि विशेषतया किसी प्रक्रिया को(जिसका प्रतिनिधित्व करे)धीमा बना देता है। अतः ऐसे व्यक्ति की कामेच्छा कम होती है। इसका कारण यह है कि वृष राशि स्वयं काम धर्म रूप है जो शनि से पीड़ित होकर सप्तम में मंगल की राशि पर पूर्ण दृष्टि रखेगी। धनु लग्न में हो तो सप्तम में मिथुन राशि शनि दृष्ट भी रहेगी। कदाचित् इसी कारण अल्प कामयोग माना गया है।

स्वक्षेत्री शुक्र तो विशेषतया लालित्यपूर्ण पसन्द को देता है।

मितभाषी फूल:—छोटे नेत्र योग :

मन्दे नक्रेऽल्पभाषीत्यथ रिपुगृहपे वा सुधांशावदृश्ये
चेदर्धे संस्थितेऽङ्को भवति जनिमतां नेत्रयोः क्रूरयुक्ते।

पश्येत्क्षीणं न चन्द्रं यदि भृगुतनयः सूर्यजः पश्यतीन्दुं
स्वर्क्षे चन्द्रे नभः स्थैर्यदि मदनगतैर्वीक्ष्यते पापखेटैः ।।२१।।

यदि शनि कहीं भो मकर राशि में स्थित हो तो मनुष्य बहुत कम बोलता है अर्थात् वह मितभाषी होता है।

यदि षष्ठेश चन्द्रमा या क्रूर युक्त चन्द्रमा अदृश्य चक्रार्ध में स्थित हो तो मनुष्य की आंखों में निशान (फूला) होता है।

यदि क्षीण चन्द्रमा को शुक्र न देखता हो, शनि चन्द्रमा को देखता हो, अथवा स्वराशिगत चन्द्रसा को सप्तम दशम भावगत क्रूर ग्रह देखते हों तो उसकी आंखों का आकार छोटा होता है।

मकर राशि में शनि होने से मनुष्य विशेष ऊंचा या अनावश्यक नहीं बोलता है। वह शब्द प्रयोग में कंजूस होता है। कम-से-कम शब्दों से ही काम चला लेता है। इसके पीछे क्या युक्ति है, यह बात स्पष्ट नहीं है। यदि द्वितीय, पंचम में यह योग हो तो कुछ विशेष फल दिखाएगा या किसी भी स्थान में उक्त फल देगा, यह बात स्पष्ट नहीं है।

दूसरा योग आंखों में सफेद निशान या किसी भी प्रकार के निशान के विषय में बताया गया है। फूला, नासूर, सफेद मोतियाबिन्द आदि की सम्भावना पर भी विचार किया जा सकता है।

इस योग में चन्द्रमा की स्थिति अदृश्य चक्रार्ध में होनी चाहिए। साथ ही वह चन्द्रमा षष्ठेश हो या क्रूर ग्रह से युक्त भी हो।

यह अदृश्य चक्रार्ध क्या है? बारह राशियां क्रमशः पूर्व क्षितिज पर उदित होती हैं। राशि चक्र की स्थिति माला की तरह है।

जिस समय पूर्व क्षितिज पर कोई भी राशि उदित हो रही होगी, उस समय उससे पिछली ६ राशियां दिखाई पड़ रही होती हैं, अर्थात् वे उदित हो चुकी होती हैं। शेष ६ राशियां अनुदित होती हैं। कल्पना कीजिए सिंचाई के साधनभूत रहट व राशि चक्र में समानता की। जिस प्रकार रहट की कुछ बाल्टियां या डोल चलते समय दिखाई पड़ती हैं और कुछ कुएं के अन्दर ही रहती हैं। बारी-बारी से चक्र घूमता रहता है। यही स्थिति राशिचक्र की भी है। माना राशि चक्र रूपी रहट की माला में १२ राशि रूपी बाल्टियां हैं। जिस समय मेष राशि निकलती दिखेगी, उस समय उससे पिछली ६ राशियां मीन, कुम्भ, मकर, धनु,

वृश्चिक व तुला का आधा भाग उदित हो चुका होगा। व शेष मेषार्ध भाग व वृष से तुलार्ध तक अनुदित रहेगा अर्थात् उदित जो दिखता हो, उदित हो चुका हो अर्थात् **'दृश्यार्ध भाग'** शेष अनुदित, जो न दिखे, जो अभी उदित न हुआ हो अर्थात् **'अदृश्यार्ध भाग'**।

सप्तम भाव के भोग्यांश से लग्न के भुक्तांश तक **'दृश्यार्ध'** उदित या वाम भाग होता है।

लग्न भोग्य से सप्तम भुक्तांश तक **अदृश्यार्ध**, अनुदित या दक्षिण भाग होता है।

लेकिन विद्वान् टीकाकार ने भ्रमवश लिख दिया है—

(i) **'सप्तमभावभोग्यांशानारभ्याष्टमादि क्रमेण लग्नभुक्तांशपर्यन्तम् अदृश्यचक्रार्धं ज्ञेयम्।'**

(संस्कृत टीका, पं० हरभानु)

इसी आधार पर कुछ हिन्दी टीकाओं में भी इसी का अक्षरानुवाद कर दिया गया है। अर्थात् मक्खी पर मक्खी मारते चले गए।

चक्रार्ध के दृश्यादृश्य भागों का निर्णय उपयुक्त प्रकार से अभी बता चुके हैं। यह हमारी कपोल कल्पना नहीं है।

ज्योतिष के मान्य ग्रन्थों का उद्धरण भी देखिए, जो हमारी बात को पुष्ट करते हैं। वैसे यह बात प्रसिद्ध व सामान्य ही है, जिसे साधारण विद्यार्थी भी समझते हैं—

'लग्नस्य भोग्या द्युनभस्य भुक्ता अदृश्यखण्डानुदिते च संज्ञे।
भोग्यांशका द्यूनगृहस्य भुक्ता दृश्यं विलग्नस्य तयोदिताख्यम्॥'

(शम्भु होरा प्रकाश)

लग्न के भोग्यांश से सप्तम भुक्तांश तक अदृश्य व अनुदित खण्ड है। सप्तम भोग्य से लग्न भुक्त तक दृश्य व उदित खण्ड है।'

साथ ही विद्यार्थियों के ज्ञानार्थ और भी बताते हैं।

दशम भाव के भोग्यांश से चतुर्थ भुक्तांश तक 'पूर्वार्ध या पूर्वदल' होता है। शेष भाग (चतुर्थ भोग्य से दशम भुक्त तक) **उत्तरार्ध** या **परार्ध** संज्ञक होता है।

अस्तु, प्रकृत श्लोक को लें। उसके चतुर्थ चरण का सम्बन्ध अगले श्लोक से है।

शुक्र क्षीण चन्द्र को न देखे और शनि देखे तथा वह क्षीण चन्द्रमा स्वराशि में हो और दशम-सप्तमगत अन्य क्रूर ग्रहों से दृष्ट हो तो मनुष्य **'अल्पनेत्र'** होता है।

अल्प नेत्र से तात्पर्य आंखों का आकार छोटा हो या नेत्र ज्योति क्षीण हो—ये दोनों ही लिये जा सकते हैं। इनमें आकार की लघुता मुख्य है।

कानापन, नेत्र पीड़ा व कान्तिहीन नेत्र योग :

स्यान्नूनं चाल्पनेत्रस्तदनु तनुगतं भूमिजं वा क्षपेशं
पश्येद्वाचस्पतिश्चेदसुरकुलगुरु: काणदृङ् मानवः स्यात्।
विच्छाया तिग्मभानोः क्षितिभुवि च पुरोभागगे दृङ्नराणां
सौम्ये चिह्नं दृशि स्यादथ वपुषि लये भार्गवे क्रूरदृष्टे ॥२२॥

जिसकी जन्म कुण्डली में मंगल या चन्द्रमा लग्न में हो, और उसे बृहस्पति या शुक्र देखता हो तो मनुष्य काना होता है।

यदि मंगल सूर्य से पूर्व कालांश तुल्य अन्तर पर हो, अर्थात् अस्त होना ही चाहता हो तो मनुष्य की आंखें कान्तिहीन चमक रहित होती हैं।

इसी प्रकार सूर्य से बुध यदि पूर्व हो और अस्ताभिलाषी हो तो नेत्र पर चिन्ह होता है।

यदि लग्न या अष्टम में शुक्र पापदृष्ट हो तो मनुष्य की आंखों में पानी आता रहता है। अर्थात् वह त्वरित अश्रुपात से पीड़ित होता है।

ये सभी योग बड़े सटीक हैं। लेकिन काण योग में सर्वत्र कानापन नहीं देखा जाता है। कभी-कभी किसी की एक आंख दूसरी आंख से अपेक्षाकृत छोटी होती है। अथवा आंख के आसपास चोट लगने का भय बना रहता है।

लग्नगत या अष्टमगत शुक्र पापयुत दृष्ट होकर मनुष्य की आंखों में जल्दी पानी लाता है, यह बहुत अनुभूत है।

नेत्र विकार के अन्य योग :

नेत्रे पीडाऽश्रुपातात्तदनु शशिकुजावेकभावे यदाऽक्ष्णो-
श्चिह्नं किंचित्तदानीं ग्रहबलवशतो दृश्यमेवं सुधीभिः।

मार्तण्डे रिःफयाते तदनु नवमगे पुत्रगे वा खलाढ्ये
दृष्टे वा स्यान्मनस्वी सुविकलनयनः सूर्यजे व्याधियुक्तः ॥२३॥

जिसकी कुण्डली में चन्द्रमा और मंगल एक ही स्थान में स्थित हों या एक ही नवांश में हों तो उसको आंखों में चिन्ह होता है। इस चिन्ह की उत्कटता का विचार विद्वानों को ग्रह बल के आधार पर देखना चाहिए।

यदि सूर्य द्वादश, नवम या पंचम भवन में पापग्रहों से युक्त हो तो मनुष्य की आंखें चिपचिपी-सी या पीड़ित होती हैं। यदि उक्त स्थानों में सूर्य पापदृष्ट हो तो भी उक्त फल समझना चाहिए। लेकिन ऐसी स्थिति में मनुष्य मनस्वी अर्थात् स्वाभिमानी होता है।

यदि शनि क्रूर ग्रहों से युत या दृष्ट होकर द्वादश, नवम, पंचम में हो तो मनुष्य प्रायः रोगी रहता है।

द्वादश में सूर्य या शनि मनुष्य को प्रायः रोगी बनाता है। त्रिकोण में सूर्य व शनि प्रायः उदर क्षेत्र में रोग प्रदान करते हैं। यदि इन पर शुभ दृष्टि या योग भी साथ में हो तो प्रायः बहुत अशुभ फल नहीं होता है।

छोटा कद (वामन) और दाद होने के योग :

चन्द्रं पृष्ठोदयस्थं हिबुकगृहगतः सूर्यसूनुः प्रपश्ये-
दित्थं लग्नाधिनाथे क्रियभवनगते मानवो वामनः स्यात्।
कोशे पीयूषभानुर्जलचरगृहगः सौरिणा संयुतो वा
मार्तण्डे भूमिकेन्द्रे यदि भवति तदा दद्रुमान् पुरुषः स्यात् ॥२४॥

यदि चन्द्रमा पृष्ठोदय राशियों में स्थित हो और चतुर्थ स्थान में स्थित शनि उसे देखता हो, साथ ही लग्नेश मेष राशि में स्थित हो तो मनुष्य वामन अर्थात् बौना होता है।

यदि चन्द्रमा द्वितीय स्थान में किसी जलचर राशि में स्थित हो अथवा चन्द्रमा शनि से युक्त हो अथवा सूर्य लग्न में ही स्थित हो तो मनुष्य को दाद (Ring-worm) होते हैं।

मेष, वृष, कर्क, धनु, मकर ये पांच राशियां पृष्ठोदय कहलाती हैं। उदित होते हुए जिन राशियों का पिछला भाग पहले दृष्टिगत हो वे पृष्ठोदय होती हैं और जिन राशियों का शिरोभाग पहले उदित होता है, वे 'शीर्षोदय' राशियां कहलाती हैं। मीन राशि का स्वरूप दो

मछलियों का है। वे मछलियां कुछ इस तरह से स्थित हैं कि एक-दूसरे की पूंछ परस्पर दूसरे के मुंह से मिली है। अत: जब वह उदित होती है तो एक मछली का शिरोभाग व दूसरी का पुच्छभाग उदित होता है, अत: वह उभयोदयी मानी जाती है।

प्राय: जिनकी जन्म राशि या जन्म लग्न पृष्ठोदय में हो वे व्यक्ति मझोले कद के होते हैं। लेकिन मकर (२०° तक) राशि लग्न के विषय में हमने देखा है कि वे व्यक्ति प्राय: लम्बे होते हैं। कई जगह तो हमने देखा है कि माता व पिता दोनों ही ठिगने कद के थे, लेकिन लड़का (मकर लग्न) या लड़की लम्बे कद के निकले। ये बातें बहुत कुछ पैतृक संस्कार व पोषण पद्धति पर भी निर्भर करती हैं। सामान्यत: इन योगों में मध्यम कद होता है।

मनुष्य की शरीराकृति के निर्णय में बृहज्जातक प्रोक्त यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है–

'लग्ननवांशपतुल्यतनु: स्याद् वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा।
चन्द्रसमेतनवांशकवर्ण: कादिविलग्नविभक्तभगात्र: ।।'

(बृह०, जन्मविधि, श्लोक २३)

जातक की आकृति, वर्ण, रूप आदि के लिए इस सरणि का प्रयोग करना चाहिए—

(i) लग्न में स्थित नवांश का स्वामी व लग्नेश।
(ii) सर्वाधिक बली ग्रह।
इनसे कद-काठी का विचार करें।
(iii) चन्द्रमा का नवांशेश।
(iv) लग्नादि द्वादश भावों में स्थित राशियां।
इनसे वर्णादि का विचार करें।

स्वयं वराहमिहिर ने लघुजातक में कहा है कि इस प्रकार निश्चय करके भी मनुष्य की कुल-क्रमागत जाति, रूप, देश, कालादि का विचार अवश्य करके निर्णय करना चाहिए।

'बुद्ध्वा वा जातिकुलदेशान्।'

उदाहरणार्थ पीछे भावाध्याय श्लोक १९ की व्याख्या में प्रस्तुत कर्क लग्न वाली व मिथुन राशि वाली कुण्डली देखिए। अपेक्षित विवरण इस प्रकार है—

(१) लग्नेश चन्द्रमा मिथुन राशि में है।
(२) लग्न में सिंह नवांश व नवांशेश सूर्य मकर राशि में है।
(३) सूर्य उच्च नवांश, केन्द्रगत एवं शुभयुक्त होकर लग्न को देखता है। अतः बली है।
(४) तथापि मंगल स्वक्षेत्री होकर बली है। मंगल वर्गोत्तम नवांश में है।

लग्न नवांशेश सूर्य का वर्ण रक्त श्याम अर्थात् लाली लिए गौर गोधूम वर्ण है। उसकी नवांश राशि मेष का वर्ण भी लाल है।

चन्द्रमा मकर नवांश में है और मकर का वर्ण चमकीला है।

अतः जातक का रंग गोरा, लालिमा लिए हुए और कभी-कभी श्यामलता को प्राप्त करने वाला सिद्ध होता है।

वास्तव में जातक उक्त सभी गुण लिए हुए है। अब कद के विषय में देखिए।

लग्न में कर्क राशि का शरीर मोटापा लिए होता है।

सिंह (नवांश राशि) बड़ा शरीर रखती है। सूर्य का शरीर मध्यम (चौरस) है। अतः लग्न नवांशप तुल्य मध्यम कद ही जातक का है।

लग्न राशि के तुल्य मोटापे की प्रवृत्ति विद्यमान है।

चन्द्र राशि मिथुन का सम शरीर है। अर्थात् चौरस-सा शरीर है।

चन्द्र नवांश राशि मकर का बड़ा शरीर है। लेकिन चन्द्रमा व चन्द्र नवांशेश शनि क्रमशः गोल-मटोल व लम्बा शरीर है। अतः मध्यम कद, चौरस शरीर, मोटापे की प्रवृत्ति का बहुमत है, जो सर्वथा सत्य है। इस प्रकार देश, काल व परिस्थिति, कुलक्रम को ध्यान में रखकर आप स्पष्ट कथन कह सकते हैं।

अब दूसरे योग को लें। जलचर राशियां क्रमशः कर्क, कन्या, मकर का उत्तरार्ध एवं मीन हैं। इन राशियों में चन्द्रमा को द्वितीय स्थान में शनि की दृष्टि या युति प्राप्त हो तो मनुष्य दाद से पीड़ित होता है। यह योग उत्तम है।

लेकिन सूर्य लग्न में हो तो भी उक्त फल बताया गया है। यह बात कुछ गले नहीं उतरती है। अकेला सूर्य लग्न में हो तो ऐसा कुछ नहीं होता, यह अनुभूत है। सूर्य पर शनि या राहु या मंगल की दृष्टि अवश्य रक्त विकार पैदा करती है।

प्लीहा, अन्धापन, दुःख प्राप्ति के योग :

दृष्टे क्रूरैर्न सौम्यैर्यदि रिपुगृहपे चोडुपे प्लीहवान् स्या-
देवं कामाङ्गनाथे तदनु रविसुतस्तुर्यगो नष्टदृष्टिः।
प्लीही स्याल्लग्ननाथे दिनकरतनये क्रूरनिष्पीडितेचेत्-
सौख्यायुङ्मानवः स्यात्तदनुसदनगते प्लीहवान् हर्षहीनः ॥२५॥

यदि षष्ठेश चन्द्रमा को पाप ग्रह देखते हैं और कोई शुभ ग्रह उसे न देखता हो तो मनुष्य को प्लीहा रोग होता है।

इसी प्रकार लग्नेश व सप्तमेश चन्द्रमा को केवल क्रूर ग्रह देखते हों तो भी प्लीहा रोग होता है।

यदि चतुर्थ स्थान में स्थित शनि को कई पाप ग्रह देखते हों तो मनुष्य की दृष्टि नहीं रहती।

यदि मकर या कुम्भ लग्न में जन्म हो और शनि क्रूर ग्रहों से पीड़ित हो तो मनुष्य सुख रहित जीवन व्यतीत करता है।

यदि उक्त प्रकार से शनि लग्न में स्थित हो तो मनुष्य प्लीहा का रोगी और आनन्दरहित जीवन बिताने वाला होता है।

यकृत प्लीहा नाम से जिगर से सम्बन्धित रोग आयुर्वेद में प्रसिद्ध है। यह पेट का रोग है। इसमें शरीर पीला होता है तथा बुखार भी होता है। कदाचित् पीलिया इसी का बिगड़ा रूप है जो अब दूसरे अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। प्लीहा, जिगर, पाण्डु, कामला आदि रोग सम्भवतः मिलते-जुलते हैं। आम भाषा में यह जिगर तिल्ली रोग है।

शनि सब ग्रहों में दास है। अतः शनि की राशि या लग्न में पैदा होने विशेषतया शनि की राशि में सूर्य का संचार होते जो व्यक्ति पैदा होते हैं, वे प्रायः जरूरत से ज्यादा मेहनती व जीतोड़ काम करने वाले होते हैं। अतः लग्नेश शनि पर क्रूर प्रभाव जीवन में आराम व सुख को घटाएगा।

विकलांगता योग :

क्रूराः केन्द्रालयस्था वपुषि च विकलः केन्द्रगौ पुष्पवन्तौ
किं वा लग्ने प्रपश्येत्कविमिनतनयः श्रोणिभागेऽङ्गहीनः।

काव्यः पातालयायी सुरपतिगुरुणा क्वापि युक्तोऽर्कसूनु-
र्भौमो वा रौहिणेयो भवति हि विकलः श्रोणिभागे भुजेऽङ्घ्रौ ।।२६।।

क्रूर ग्रह यदि केन्द्र में स्थित हों तो मनुष्य का सारा शरीर ही विकल (अस्फूर्त) रहता है।

अथवा सूर्य व चन्द्रमा एक साथ केन्द्र में हों तो भी मनुष्य का सामान्य स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है।

यदि लग्न में स्थित शुक्र को शनि देखता हो तो मनुष्य के नितम्ब भाग (Hips) में विकलांगता होती है।

यदि शुक्र चतुर्थ स्थान में स्थित हो तो और बृहस्पति से युक्त शनि, मंगल या बुध हो तो मनुष्य नितम्ब, हाथ या पैरों में विकलता का अनुभव करता है।

यहां विकलांगता से तात्पर्य अंगहीनता से नहीं है। हमारे विचार से शरीर के विशेष अंग की कमजोरी या कम कार्यशीलता से ही यहां तात्पर्य है। विकलांगता विशेष प्रभावशाली योगों में ही कहनो चाहिए। विकल शब्द का अर्थ असमर्थ, कान्तिहीन, शक्तिहीन है। अत: आजकल विकलांग (Handicapped) अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है। प्राचीन ग्रन्थों में अंग-भंग के नाम से वे योग दिए जाते हैं। जबकि विकलता से तात्पर्य अल्पशक्तिमत्ता से ही है। इसमें सदैव के लिए अपंग होने का भाव कदाचित् निहित नहीं है। यह बात श्लोक से भी स्पष्ट हो जाती है। कहा गया है कि क्रूर ग्रह केन्द्रों में हों तो मनुष्य शरीर से विकल होता है। ऐसी स्थिति में तो उसका सारा शरीर ही अपंग होकर वह सर्वथा पराश्रित हो जाना चाहिए।

हाथ-पैरों को विकलता :

आयुःपुण्याधिनाथौ यदि खलखचरास्तुर्यगौ पापयुक्तौ
जङ्घावैकल्यवान् स्यात् कुजशनिसहिते सैंहिकेये च सूर्ये।
द्व्यष्यस्थे तद्वदेवं शनिरिपुगृहपौ रिष्फयातौ खलैश्चेद्
दृष्टौ तद्वत्तदानीं रविविधुरविजा वैरिरन्ध्रालयस्थाः ।।२७।।

यदि अष्टमेश व नवमेश से दशम स्थान में क्रूर ग्रह हों, अर्थात् क्रूर

ग्रह से चतुर्थ में अष्टम नवमेश पड़ते हों तो मनुष्य की जंघाएं विकल होती हैं।

यदि मंगल व शनि, राहु से युक्त हों और सूर्य षष्ठ स्थान में हो तो भी मनुष्य पैरों से विकल होता है।

यदि शनि और षष्ठेश दोनों द्वादश स्थान में स्थित हों और क्रूर ग्रह उन्हें देखते हों तो भी पैरों में विकलता होती है।

यदि सूर्य, शनि और चन्द्रमा षष्ठ अष्टम भाव में स्थित हों तो मनुष्य के हाथ में पीड़ा होती है।

पुरुषत्व शक्तिहीनता योग :

स्यादार्तिः पञ्चशाखे तदनु दशमगे सूर्यसूनौ सिताढ्ये
क्लीबः स्यात् सूर्यसूनौ व्ययरिपुगृहगे शुक्रतः क्लीबरूपः।
पश्येत्सूर्यालयस्थो मदनभवनगं भूमिसूनुं सुधांशु-
श्चार्कः काणश्च कर्के यदि शुभगृहपो मेर्षासिहालिनक्रे ॥२८॥

यदि शुक्र सहित शनि दशम स्थान में हो तो मनुष्य पुरुषत्व शक्ति से रहित क्लीब होता है।

यदि शुक्र से षष्ठ या द्वादश स्थान में शनि स्थित हो तब भी व्यक्ति पुरुषत्वहीन होता है।

यदि सिंह राशि में स्थित चन्द्रमा सप्तम भाव में स्थित मगल को देखता हो तो मनुष्य एक आंख से रहित होता है।

इसी प्रकार कर्क राशिगत सूर्य सप्तमगत मंगल को देखता हो तो भी मनुष्य एक नेत्र वाला होता है।

यदि मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर में नवमेश हो, तब उक्त काणत्व सिद्ध होगा।

अर्थात् काणयोग इस स्थिति में बनेगा—

यदि नवमेश मेष, सिंह, वृश्चिक, मकर में हो और कर्कगत सूर्य या सिंहगत चन्द्रमा, सप्तमगत मंगल को देखता हो।

मूल में आया 'शुभ' शब्द नवम भाव का वाचक है। शुभ, त्रित्रिकोण, तप, पुण्य, भाग्य आदि नाम नवम के ही हैं। वैसे पाराशरी मत में केन्द्र व त्रिकोण शुभ भाव हैं, लेकिन वह आशय यहां नहीं है।

उक्त श्लोक में बताए गए काण योगों के विषय में ध्यान रखना चाहिए कि चन्द्र या सूर्य तभी काण योगकारक होंगे जब वे लग्न में स्थित होंगे। सिंह लग्नस्थ चन्द्रमा या कर्क लग्नस्थ सूर्य सप्तमस्थ मंगल से समसप्तक योग बनाएगा। दोनों में दृष्टि सम्बन्ध रहेगा। ध्यान रहे, सिंह लग्न में द्वादशेश चन्द्र एवं कर्क लग्न में द्वितीयेश सूर्य नेत्रों के प्रतिनिधि होंगे। मंगल सप्तम में बैठकर इन दोनों को पीड़ित करेगा। लेकिन हमारे अध्ययन में एक सिंह लग्न की कुण्डली आयी थी। उसकी सम्पूर्ण ग्रह स्थिति अब मेरे पास नहीं है, लेकिन मुझे याद है कि लग्नस्थ चन्द्रमा व सप्तमस्थ शनि था। अन्य कोई नेत्र हानि योग नहीं था, लेकिन वह व्यक्ति अन्धा हो गया था।

अस्तु, सूर्य व चन्द्रमा दोनों ही नेत्र ज्योति को प्रभावित करते हैं, ये नेत्र स्थानेश होकर पापयुक्त या दृष्ट हों तो अवश्य ही नेत्र को हानि होगी।

कुछ प्रसिद्ध क्लीब योग :

अन्योऽन्यं पश्यतश्चेत्तरणिहिमकरौ तत्तनूजौ मिथो वा
भूसूनुः पश्यतीनं समभवनगतं त्वङ्गचन्द्रौ यदौजे।
ओजर्क्षे युग्मराशौ हिमकरशशिजौ भूसुतेनेक्षितौ चेत्
पुंराशौ लग्नशुक्रौ तदनु हिमकरः क्लीबयोगाः षडेते ॥२६॥

यदि सूर्य व चन्द्रमा परस्पर एक-दूसरे को देखते हों और चन्द्र, सूर्य विषम राशि में हों तो इस योग में नपुंसक का जन्म होता है।

इसी प्रकार सूर्य पुत्र शनि व चन्द्र पुत्र बुध भी परस्पर एक-दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखें और विषम राशि में हों।

अथवा मंगल व सूर्य परस्पर एक-दूसरे को देखते हों और सूर्य सम राशि में स्थित हो।

अथवा लग्न व चन्द्रमा दोनों ही विषम राशियों में हों। इन पर सम राशिगत मंगल की दृष्टि हो।

यदि विषम राशिगत चन्द्रमा व सम राशिगत बुध को मंगल देखता हो।

अथवा लग्न, शुक्र और चन्द्रमा पुरुष राशि में हों। इन योगों में मनुष्य नपुंसक होता है।

इन योगों की प्रस्तुति थोड़े भेद से गणेश कवि ने वराहमिहिर व कल्याण वर्मा के आधार पर की है। ये ६ योग **बृहज्जातक** में इस प्रकार बताए गए हैं—

अन्योन्यं यदि पश्यतः शशीरवी यद्यार्कि सौम्यावपि,
वक्रो वा समगं दिनेशमसमे चन्द्रोदयौ चेत्स्थितौ।
युग्मौजर्क्षगतौ अपीन्दुशशिजौ भूम्यात्म जेनेक्षितौ,
पुंभ्भागेसितलग्नशीतकिरणाः स्युः क्लीबयोगाश्च षट् ॥

(निषेक० श्लोक १३)

वराहमिहिर के इस श्लोक का अर्थ बिल्कुल वही है, जो हम पहले व्याख्या में बता चुके हैं। हमारी उक्त व्याख्या बादरायण, कल्याण वर्मा व वराहमिहिर के मन्तव्य पर आधारित है। कुछ लोगों ने सम व विषम राशि वाले तृतीय चरणस्थ पदों का अन्वय पूर्व में सर्वत्र मानकर अर्थ किया है। यथा सूर्य व चन्द्रमा सम विषम राशि में हों और परस्पर दृष्टि करें। यह बात विशेष महत्त्व की नहीं है। दोनों परस्पर सप्तम में होंगे तभी पूर्ण दृष्टि होगी। अन्य स्थानों में जाकर दृष्टि पादात्मक होगी। वह प्रभावी नहीं होती है। फिर बादरायण ने स्पष्ट कहा है—

'अन्योन्यं रविशशिनौ विषमौ——।'

(बादरायण)

बादरायण मत के लिए हमारी बादरायणकृत **'प्रश्न विद्या क्षमा व्याख्या'** का प्रकीर्ण मुक्ता प्रकरण देखें।

अतः सम विषम वाली बात नहीं मानी जा सकती है। परस्पर सप्तम में रहने पर दोनों विषम में ही होंगे। वास्तव में वराह मिहिर के अनुकरण पर गणेश कवि ने अपने श्लोक के भी तृतीय चरण में **'ओजर्क्षे युग्मराशौ'** लिख दिया है जो वराह व गणेश कवि के यहा केवल बुध व चन्द्रमा के साथ अन्वित है।

लेकिन टीकाकारों में इस भ्रम का सूत्रपात सर्वप्रथम भट्टोत्पल ने किया है। बृहज्जातक के उक्त श्लोक में **'युग्मौजर्क्षगतौ'** पद का अन्वय सर्वत्र लग सकता है संयोगवश वन गया है। वराहमिहिर का ऐसा तात्पर्य नहीं था। तदनुसार ही जातकालंकार के टीकाकारों ने भी व्याख्या कर दी। लेकिन भट्टोत्पल की टीका कोई विशेष नहीं

है। बृहज्जातक के दुरूह स्थलों में उन्हें भी संकोच ही बना रहा था, यह बात विद्वानों से छिपी नहीं है।

हमने उक्त श्लोक की व्याख्या सारावली, बादरायण व बृहज्जातक के आधार पर की है। सारावली के कई पाठ प्रचलित हैं। लेकिन सभी पाठों में पहली पंक्ति लगभग इस प्रकार है—

'अन्योन्यं रविचन्द्रौ विषमौ विषमर्क्षगौ निरीक्षेते।'

इसमें स्पष्टतया विषमर्क्षगौ अर्थात् दोनों विषम राशिगत कहे गए हैं। फिर छन्द की दृष्टि से भी उक्त पंक्ति ही ठीक बंठती है।

अस्तु, युक्ति व शास्त्र दोनों से ही उक्त अर्थ संगत बैठता है। हमारे विचार से भी विषम राशिगत होकर ही उक्त फलकारक पूर्ण दृष्टि कर सकेंगे। विद्वान् पाठक विचार करें।

वास्तव में ये योग बृहज्जातक में आधान प्रकरण में बताये गए हैं तथा इनका विचार आधान लग्न में ही वहां अभिप्रेत है। बृहज्जातक की एक संस्कृत टीका में लिखा गया है—

'एवं क्लीबयोगा उक्ताः न केवलमाधानप्रश्नकालाभ्यां नपुंसक जन्मसूचकाः जातस्य जन्मकाले सन्ति चेत्संतति हानिकरा इति केचित्।'

(दशाध्यायी टीका)

'ये नपुंसक जन्मयोग प्रश्न व आधान में नपुंसक जन्म सूचक हैं लेकिन जन्म लग्न में ये सन्ताननाशक होते हैं ऐसा किसी का मत है।'

बृहज्जातक के एक अन्य टीकाकार रुद्रभट्ट ने कहा है कि श्लोक में प्रथम तीन योगों में प्राणी हिजड़ा (गुप्तांग रहित) होता है तथा बाद के योगों में वह सम्भोग की क्षमता नहीं रखता है।

अण्डकोषवृद्धि के योग :

आयुःस्थानोपयाते धरणिसुतयुते भार्गवे वातकोपात्
काव्ये भौमेन युक्ते कुजभवनगते भूमिजा मुष्कवृद्धिः।
भौमर्क्षे काव्यचन्द्रौ सुरपतिगुरुणा सूर्यजेनाथ दृष्टौ
नूनं स्यान्मानवानां जनुषि कललजा मुष्कवृद्धिर्नितान्तम्॥३०॥

यदि अष्टम स्थान में मंगल व शुक्र हों तो वायु प्रकोप से मनुष्य के अण्डकोष बढ़ जाते हैं।

यदि शुक्र, मंगल की राशि (मेष, वृश्चिक) में मंगल से युक्त हो त
पृथ्वी तत्त्व के कारण भूमि संसर्ग से अण्डवृद्धि होती है।

यदि मंगल की राशि में शुक्र व चन्द्रमा को बृहस्पति या शनि देखत
हो तो मनुष्य को विशेषतया खूब वृषणवृद्धि होती है। तब वीर्य :
रक्त विकार के कारण ऐसा होता है।

अण्डकोष वृद्धि को सामान्यतया अण्डकोष में पानी उतरन
(Hydrocele) कहते हैं। इसमें मनुष्य के अण्डकोष द्रव पदार्थ से भ
किसी थैले की तरह लटक जाते हैं। यह विशेषतया पानी के प्रदूषण य
संक्रमण से होता है। पूर्वी उत्तरप्रदेश में प्रायः लोगों को यह रोग होत
है। बनारस की तरफ के लोगों को यह बीमारी खूब होती है। कदाचित
वहां का पानी ही ऐसा है। ऐसे स्थलों पर इनका विचार सूक्ष्मता से
करना चाहिए।

दन्तरोग-गंजापन व बन्धन योग

क्रूरैर्दृष्टे विलग्ने सुविकृतरदनश्चापगो मेषसंज्ञे
खल्वाटः पापलग्ने धनुषि गवि तथाऽऽलोकिते क्रूरखेटैः।
धर्मार्थान्त्यात्मजस्था यदि खलखचरा बन्धभाक् पूरुषः स्या-
देवं लग्ने क्रिये वा धनुषि गवि तथा रश्मिजं बन्धनं नुः ॥३१॥

यदि मेष, वृष या धनु लग्न को क्रूरग्रह देखते हों तो मनुष्य के दांतों
में विकार होता है।

धनु या वृष लग्न में क्रूर ग्रह हो और उसे कोई अन्य क्रूर ग्रह भी
देखता हो तो मनुष्य गंजा होता है।

यदि पंचम, नवम, द्वितीय व द्वादश में क्रूर ग्रह हों तो मनुष्य को
बन्धन होता है।

इसी प्रकार मेष, वृष, धनु लग्न में क्रूर ग्रह हों तो मनुष्य को रस्सी
का बन्धन प्राप्त होता है।

प्रथम व सप्तम स्थान दांतों के हैं। प्रथम व द्वितीय (मेष, वृष
राशियां) मुखगुहा क्षेत्र व सम्पूर्ण मुखमण्डल का प्रतिनिधित्व करती
हैं। सप्तम स्थान से भी दांतों का विचार फलित ग्रन्थों में लिखा गया
है। मेष, वृष लग्न में विशेषतया राशि व भाव दोनों ही दांत से सम्बन्ध
रखेंगे और क्रूराक्रान्त होने के कारण दांतों में विकार उत्पन्न करेंगे।

गंजापन भी प्रथम द्वितीय भाव से ही विचारणीय है। दोनों ही रोगों में समान लग्न में क्रूर दृष्टि मानी है। तब दैवज्ञ उसे गंजा बताएगा या दन्त रोगी। वास्तव में ये योग व्यवहार में विशेष खरे नहीं उतरते हैं। इनके अलावा सैकड़ों कुण्डलियों में शुभ प्रभाव होने पर भी दन्त रोग देखा गया है। गंजापन तो आजकल प्राय: ४०-५० वर्ष की आयु से स्वयं ही आने लगता है, यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अत: भरी जवानी में बिल्कुल गंजा होना ही ज्योतिष द्वारा सूच्य है।

सामान्यत: सूर्य का प्रभाव लग्न या लग्नेश पर हो तो व्यक्ति के सिर पर कम बाल होते हैं, ऐसा हमने बहुत देखा है। सूर्य का स्वरूप भी 'अल्पकच' कम बालों वाला ही कहा गया है। सामान्यत: कर्क, धनु, मीन के जातक कम बालों वाले होते हैं। बन्धन योगों के विषय में बिल्कुल ठीक बात कही गई है। लेकिन इसमें २.१२, ५.९ और ६.१२ और ३.११ भावों में समान संख्यक क्रूर ग्रह हों तो यह फल स्पष्ट घटित होता है। इस विषय में हमने विस्तृत व सोदाहरण विवेचन अपने **जातक तत्त्व अखिलाक्षरा** के पृ० २८५-२९० पर किया है।

शरीर दुर्गन्ध योग

दुर्गन्धिर्दानवेज्ये शनिभवनगते मानवो विग्रहे स्याद्
द्वेष्याधीशे बुधर्क्षे तदनु मकरगे तद्वदत्राथ काव्ये।
केन्द्रस्थे तेन युक् स्यादथ कविरविजौ स्वीयहद्दायुतौचे
तद्वच्चन्द्रेऽजयाते तनुसदनगते चानने स्याद्विगन्धः ॥३२॥

यदि शुक्र मकर या कुम्भ राशि में हो तो मनुष्य के शरीर से पसीने आदि की बदबू आती है।

इसी प्रकार षष्ठेश यदि मिथुन, कन्या या मकर राशि में हो तो भी उक्त फल होता है।

यदि बुध की राशि में केन्द्र में बुध से युक्त शुक्र हो तो भी शरीर दुर्गन्ध योग होता है।

यदि शुक्र व शनि अपनी हद्दा (त्रिशांश) में हो तो भी शरीर में दुर्गन्ध होती है।

यदि मेष राशि का चन्द्रमा लग्न में हो तो मनुष्य के मुख से दुर्गन्ध आती है।

इन योगों में मनुष्य के पसीने की गन्ध तीव्र होती है। दुर्गन्ध योगों में कभी-कभी मुखदुर्गन्ध भी देखने में आती है। उक्त गन्ध का प्राकट्य मनुष्य के रहन-सहन पर निर्भर करता है। दुर्गन्ध योग होते हुए भी सभ्य व आधुनिक लोग स्वच्छता का विशेष ध्यान रखकर सुगन्धि द्रव्य व पाऊडर प्रयोग से इसे प्रकट नहीं होने देते हैं।

इस श्लोक में **'हद्दा'** शब्द का प्रयोग त्रिशांश अर्थ में किया गया है, ऐसा प्राचीन टीकाकारों ने कहा है। वास्तव में वह कथन गणेश कवि की कवित्व सम्बन्धी दुर्बलता पर लीपापोती ही है। **'स्वीयहद्दायुतो चेत्'** के स्थान पर **'स्वीयत्रिशांशगौ चेत्'** कहने पर छन्द में कुछ भी विकृति नहीं आती है और अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। तब ऐसे संदिग्ध प्रयोग का कारण कवि की शिथिलता ही है।

फिर 'हद्दा' शब्द से त्रिशांश का अर्थ ही क्यों लिया गया ? जबकि पंचवर्गी या द्वादशवर्गी में (ताजिक मत) अन्य भी वर्ग थे। फिर त्रिशांश तो द्वादशवर्गी में परिगणित भी नहीं है। इसका रहस्य कदाचित् यह हो सकता है कि 'हद्दा' शब्द का अर्थ हद अर्थात् सीमा (Limit) होता है। तब किसी भी राशि की हद तीसवां अंश है, अतः तीसवां अंश अर्थात् त्रिशांश का ग्रहण किया है, लेकिन यह एक दूर की कौड़ी है। कष्ट कल्पना यहां स्पष्ट है। जातकालंकार के संस्कृत टीकाकार पं० हरभानु शुक्ल ने छन्दोऽनुरोध से ऐसा कहा है। छन्द में त्रिशांश व हद्दा दोनों का प्रयोग कुशलता से हो सकता है, यह हम पीछे दिखा चुके हैं।

जब हद्दा शब्द का त्रिशांश से कोई सम्बन्ध भी नहीं है, प्रसंग से भी त्रिशांश का ग्रहण नहीं होता है, छन्द की भी कोई बाधा नहीं है, तब गणेश कवि ने इतनी मोटी व प्रारम्भिक विद्यार्थियों द्वारा भी पकड़ी जाने वाली भूल भला क्यों की होगी ? यदि कभी आलू व चीकू में भ्रम हो जाए तो बात चल सकती है, लेकिन आलू व टमाटर में समानता का भ्रम तो निःसन्देह दृष्टि की क्षमता पर प्रश्न चिन्ह लगा देगा।

अस्तु, एक वात और कहना चाहते हैं। यदि गणेश दैवज्ञ ने छन्दोऽनुरोध से या किसी भी कारण से हद्दा शब्द का प्रयोग त्रिशांश अर्थ में किया था, तब बाद के संग्राहक आचार्यों और विद्वानों को भी क्या वही मजबूरी बनी रही, तब वे तो सीधे त्रिशांश शब्द का प्रयोग कर सकते थे—

**'शनिगृहे शनिहद्दगतोऽपि वा, भवति चन्द्रगृहेऽप्यथ भार्गवे।
अजगते वपुषीन्दुगते बुधे रिपुपतौ च मुखस्य विगन्धता॥'**
(मनुष्यजातक, अ० १२.४६)

यहां स्पष्टतया 'हद्दा' शब्द का प्रयोग किया है—

**'दुर्गन्धः शनिभे क्रियेभृगुसुतेऽथो षष्ठपो विन्मृगे।
हद्दायां हि शनेः सितो भवति दुर्गन्धस्त्वथो लग्नगे॥'**
(जातकसारदीप)

जातकालंकार के अन्य दुर्गन्धि योगों को **'जातक तत्त्व'** में ले लिया है, लेकिन महादेव पाठक जी ने इसी विवाद के कारण इस योग को छोड़ दिया है। अन्यत्र भी हद्दा शब्द का प्रयोग देखिए—

स्वहद्दयातौ सितसूनुसूनू अजे विलग्ने रजनीशितद्वत्।'
(ज्योतिस्तत्त्वम् २३.१६)

अतः सम्भव है कि गणेश कवि ने हद्दा के वास्तविक अर्थ का ही अनुभव किया हो। हद्दा क्या है? ताजिक मत में पंचवर्गी बल जानने के लिए गृह, होरा, द्रेष्काण, हद्दा व नवांश ये पांच भाग किए जाते हैं। राशियों के निम्नोक्त अंशों में शनि की हद्दा रहती है—

शनि हद्दा ज्ञान

मेष—२६°—३०°	तुला—०°—६°
वृष—२३°—२७°	वृश्चिक—२५°—३०°
मिथुन—२५°—३०°	धनु—२७°—३०°
कर्क—२७°—३०°	मकर—२३°—२६°
सिंह—१२°—१८°	कुम्भ—२६°—३०°
कन्या—२६°—३०°	मीन—२६°—३०°

जबकि शनि का त्रिशांश विषम राशियों में ६°—१०° अंशों तक एवं सम राशियों में २१°—२५° तक रहता है। अतः हद्दा व त्रिशांश में स्वरूपगत समानता भी नहीं है। हमारा विचार है कि गणेश कवि उक्त हद्दा के अंशों में ही जब शनि हो अथवा ताजिक मतानुसार स्वहद्दा में हो तो दुर्गन्ध मानते हैं। टीकाकारों ने गड्डलिकाप्रवाह से अर्थ ग्रहण कर लिया है। विद्वान् पाठक विचार करें। फिर भी यहां बहुमत त्रिशांश के पक्ष में है।

फल कथन प्रकार :

एवं ग्रहाणां सदसत्फलानां
योगाद् ग्रहज्ञैरनुयोजनीयम्।
शुभाशुभं जन्मनि माववानां
फलं सुमत्या प्रविचार्य नूनम् ॥३३॥

इस प्रकार किसी भी विचारणीय कुण्डली में ग्रह स्थिति व उनके योगों का शुभाशुभत्व विचार कर दैवज्ञों को बुद्धिपूर्वक मानवों का फलादेश करना चाहिए।

किसी भी विचारणीय कुण्डली में सामान्यत: सभी भावों के फलों को मस्तिष्क में बिठाकर गवेषणा व समन्वयपूर्वक फलादेश करना चाहिए, यह ज्योतिषवेत्ताओं का सामान्याचार है। सर्वप्रथम ग्रह स्थिति देखनी चाहिए। किसी भी भाव का फल जानने के लिए भाव, भावपति व भाव के स्थिर कारक को दृष्टि में रखकर फल कथन व भाव फल का विचार करना उपयुक्त है। इस विषय में हम प्राय: सभी जगह लिख चुके हैं। विशेष पथ-प्रदर्शन हेतु हमारी पुस्तक **'जन्मपत्री स्वयं बनाइए'** का कुण्डली विचार प्रकरण पृ० ९९-१३५ देखें।

उपसंहार :

हृद्यैः पद्यैर्गुम्फिते सूरितोषे-
ऽलङ्कारारख्ये जातके मञ्जुलेऽस्मिन्।
योगाध्यायः श्रीगणेशेन वर्यै
र्वृत्तैर्युक्तो रामरामैः प्रणीतः ॥३४॥

सुन्दर जातकालंकार का योगाध्याय तैंतीस श्लोकों (राम-३ राम-३) में श्री गणेश कवि के द्वारा रचित हुआ है। यह श्लोक सर्वत्र समान है, केवल श्लोक संख्या में ही परिवर्तन होता है।

॥ इति पं० सुरेशमिश्रकृतायां नवाख्यायां जातकालंकार-
व्याख्यायां योगाध्यायस्तृतीयः ॥

[४]

विषकन्यायोगाध्याय:

विषकन्या योगों का परिगणन :

भौजङ्गे कृत्तिकायां शतभिषजि तथा सूर्यमन्दारवारे
भद्रासंज्ञे तिथौ या किल जननमियात् सा कुमारी विषाख्या।
लग्नस्थौ सौम्यखेटावशुभगगनगश्चैक आस्ते ततो द्वौ
वैरिक्षेत्रानुयातौ यदि जनुषि तदा सा कुमारी विषाख्या ॥१॥

आश्लेषा, कृत्तिका, शतभिषा नक्षत्रों में, रवि, मंगल, शनि वारों में तथा भद्रा तिथियों में (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी) जिस कन्या का जन्म हो, वह विषकन्या कहलाती है।

यदि लग्न में दो ग्रह हों, जिनमें एक पाप ग्रह व एक शुभ ग्रह हो, दो पाप ग्रह शत्रु क्षेत्र में गए हों। इस योग का नाम भी 'विषाख्य योग' है। अर्थात् इसमें उत्पन्न कन्या विषकन्या होती है।

योगकारक तिथि-नक्षत्रादि की व्यवस्था :

मन्दाश्लेषाद्वितीया यदि तदनु कुजे सप्तमी वारुणर्क्षे
द्वादश्यां च द्विदैवं दिनमणिदिवसे यज्जनिः सा विषाख्या।
धर्मस्थो भूमिसूनुस्तनुसदनगतः सूर्यसूनुस्तदानीं
मार्तण्डः सूनुयातो यदि जनिसमये सा कुमारी विषाख्या ॥२॥

यदि शनिवार, श्लेषा नक्षत्र और द्वितीया तिथि ये तीनों एकत्र हों तो प्रथम योग हुआ।

इसी प्रकार मंगलवार, शतभिषा नक्षत्र और सप्तमी तिथि यह दूसरा योग हुआ।

रविवार, विशाखा नक्षत्र एवं द्वादशी तिथि यह तीसरा योग हुआ।

अथवा लग्न में शनि व नवम में मंगल स्थित हो और पंचम में सूर्य हो तो यह चौथा विषकन्या योग हुआ।

विषकन्या योग यथा नाम तथा गुण होते हैं। जिस प्रकार से विष प्राणहरण में सक्षम होता है तथा शरीर व मन को कष्ट देता है, उसी प्रकार से इन योगों में उत्पन्न कन्या पति कुल में विष की तरह व्यापती है। पाराशर होरा में कहा गया है—

'विषयोगोद्भवा बाला मृतापत्या प्रजायते।
वासोभूषा विहीना च ससन्तापशुचान्विता।।'

'अर्थात् विषकन्या को मृत सन्तान उत्पन्न होती हैं और वह वस्त्राभूषणों से रहित, शोकाकुल होती है।'

श्लोक सं० १ व २ में बताए गए तिथि, वार, नक्षत्रों में कुछ समानता है। अतः पाठकों को पुनरुक्ति का भ्रम हो सकता है। लेकिन प्रथम श्लोक में बताए गए तिथि, वार, नक्षत्रों में कुछ लोग तो क्रम मानते हैं, तथा कुछ लोग नहीं मानते हैं। आशय यह है कि जिस क्रम से श्लोक में तिथि, वार, नक्षत्र बताए गए हैं वे क्रमशः यथासंख्य (Respectively) योग बनाते हैं। यथा—

(i) श्लेषा, रविवार, द्वितीया तिथि।
(ii) कृत्तिका, शनि, सप्तमी तिथि।
(iii) शतभिषा, मंगल, द्वादशी तिथि।

उक्त क्रम से योग टीकाकारों ने माने हैं। श्लोक २ में प्रोक्त योग में गणेश कवि ने स्वयं ही तिथि, वार, नक्षत्र संयोग का स्पष्टीकरण किया है।

हमारा विचार है कि इन योगों में इस प्रकार से क्रम की कल्पना दूर की कौड़ी व अनुमान मात्र ही है। यदि ये योग इसी क्रम में बनते होते तो ग्रन्थों में इसका स्पष्टीकरण होता। अथवा सब जगह तिथि, वारादि का क्रम एक जैसा होता। लेकिन ऐसा नहीं है। यहां कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं। पाठक स्वयं इसकी क्रमिकता का विचार कर लें—

'भद्रातिथौ कुजार्कार्किदिनेऽहिवरुणाग्निभे।
जातांगना विषाख्या स्याद् ध्रुवं दुष्फलभागिनी।।'

(बृहत्पाराशर, स्त्रीजातक, ४४)

'यहां वार क्रम में मंगल, रवि, शनि व श्लेषा, शतभिषा व कृत्तिका का कथन है।'

यवन जातक के निम्नलिखित श्लोक में नक्षत्र तो पाराशर क्रम में ही हैं, लेकिन वारों का क्रम भिन्न (शनि, मंगल, सूर्य) है—

'भद्रातिथिर्यदाश्लेषा शतभिः कृत्तिका तथा।
मन्दाररविवारेषु विषकन्या प्रजायते॥'

(यवनजातक)

अतः हमारे विचार से भद्रा तिथियों में उक्त वार नक्षत्रों का किसी भी क्रम से योग हो तो विष योग बनेगा।

लेकिन विशेषतया श्लोक २ में बताया क्रम हो तो वह विशेष फलदायक कदाचित् होता होगा, तभी तो गणेश कवि ने उक्त क्रम दिया है। अन्यथा द्वितीय श्लोकोक्त योगों में भी क्रम भंग अन्यत्र देखने में आता है—

द्वादशी वारुणं सूर्ये विशाखा सप्तमी कुजे।
मन्दे श्लेषा द्वितीया च विषकन्या प्रसूयते॥

(यवनजातक)

यहां शतभिषा नक्षत्र को रविवार के साथ कहा है, जबकि प्रस्तुत जातकालंकार में शतभिषा को मंगल व सप्तमी के साथ कहा गया है।

जातक तत्त्व में भी यवनजातक वाला क्रम अपनाया गया है। अतः वहुमत सिद्ध होने से यवनजातक का मत ही अधिक समीचीन होना चाहिए।

ज्योतिस्तत्त्व में मुकुन्द दैवज्ञ ने भी यवनजातक वाला क्रम ही श्लोक २ के सन्दर्भ में बताया है—

वार्कौ व्याले चेद् द्वितीया ततोऽर्के,
द्वादश्यां द्वीशर्क्षमारे शतर्क्षम्।
सप्तम्यां वा..............................॥

(ज्योतिस्तत्त्वम्, प्रकरण १५.११०)

अब जातकालंकार के इन श्लोकों में ग्रह योग जन्य विषकन्या योगों का विचार करते हैं। श्लोक सं० १ के तृतीय, चतुर्थ चरण में बताए गए योग की व्याख्या में प्राचीन टीकाकारों ने अलग सरणि अपनायी है। उनके मत में लग्न में दो शुभ ग्रह, दशम में एक पाप ग्रह

और दो पाप ग्रह षष्ठ (शत्रु भाव) में स्थित हों, तब योग बनता है। ऐसा पं० हरभानु की संस्कृत टीका में कहा गया है। प्रचलित हिन्दी टीकाओं में इसी टीका का अन्धानुकरण किया गया है।

हमारे विचार से लग्न में दो ग्रह (एक पाप व एक शुभ) पड़े हों और अन्य दो पाप ग्रह अपने निसर्ग शत्रु या अधि शत्रु की राशि में पड़े हों तो उक्त योग बनेगा। षष्ठ भाव का श्लोक भी लिया जा सकता है। श्लोक में प्रोक्त 'अशुभगगनगः' का अर्थ लोगों ने 'अशुभ ग्रह गगन (दशम) में गया हो' कर दिया है। भला अशुभ यदि कर्ता होगा तो 'अशुभः गगनगः' कहा जाएगा। तब सन्धि होकर द्वन्द भी भंग हो जाएगा। यह सब गणेश कवि की ही करामात है। वास्तव में 'अशुभ' विशेषण है और गगनगः शब्द का अर्थ ग्रह ही है। अतः यहां दशम भाव की बात कहीं भी नहीं है। लेकिन लग्न में कहीं-कहीं पर दो शुभ ग्रहों की स्थिति मानी गई है। शत्रु क्षेत्री ग्रह शुभ हों या पाप—इसका स्पष्टीकरण गणेश दैवज्ञ ने नहीं किया है।

हमने इस अंश का जो अर्थ लिखा है वह प्राचीन ग्रन्थों पर आधारित है। पाराशर शास्त्र में कहा गया है—

शुभोऽशुभश्च तनुगोऽशुभावरिगृहास्थितौ।
यदीय जन्मसमये सा कुमारी विषाभिधा॥

(बृह० पारा०, वही)

किसी संस्करण में **'द्वौ पापौ शत्रुभस्थितौ'** कहा गया है। अर्थात् लग्न में शुभ पाप दो ग्रह, षष्ठ या शत्रुक्षेत्र में दो पाप हों तो वह कुमारी विषकन्या होती है।

बृहत्पाराशर के पाठान्तर होने से **त्रैलोक्यप्रकाश** का यह स्पष्ट उद्धरण देखिए—

'रिपुक्षेत्रे स्थितौ द्वौ तु लग्ने यत्र शुभग्रहो।
क्रूरश्चैकस्तदा जातः भवेत् स्त्री विषकन्यका॥

मुहूर्त गणपति में भी लगभग यही बात कही गई है। अतः हमारे विचार से यहां दशम भाव का तो कोई प्रसंग है ही नहीं, फिर लग्नगत दो ग्रह (एक शुभ, एक पाप) अथवा लग्न में दो शुभ ग्रह व एक पापग्रह हो। शेष दो पापग्रह शत्रुक्षेत्री हों तो विषकन्या योग होगा।

यदि यहां 'षष्ठभाव' का अर्थ अभिप्रेत होता तो बार-बार रिपुगृह,

वैरिक्षेत्र, रिपुक्षेत्र, अरिगृह क्यों कहना पड़ता। केवल **रिपौ** और **अरौ** कहने भर से ही षष्ठभाव का अर्थ आ जाता, जैसे 'तनौ' अर्थात् लग्न में। फिर भी षष्ठभाव को हम गौण रूप में स्वीकार कर सकते हैं। कारण यह है कि यहां सू० मं० श० ये तीन पाप ग्रह गृहीत हैं। राहु की मैत्री होती नहीं। अतः वह शत्रुक्षेत्री कैसे होगा? कल्पना कीजिए षष्ठ में मंगल है तो भाग्य स्थान को, द्वादश स्थान को व लग्न को पूर्ण दृष्टि से देखकर पाप प्रभाव देगा। यदि शनि षष्ठस्थ हुआ तो अष्टम (पति की मृत्यु) स्थान पर, द्वादश (आत्महानि) व तृतीय (अनिष्ट) को पूर्ण दृष्टि से देखेगा। जो भी पापग्रह लग्न में रहेगा वह सप्तम को भी प्रभावित करेगा। अतः षष्ठ भाव को भी परखा जा सकता है।

श्लोक सं० २ में बताया गया योग पाराशर होरा में नहीं मिलता है। लेकिन उसमें कोई विवाद नहीं है।

लग्ने शनैश्चरो यस्याः सुतेऽर्को नवमे कुजः।
विषाख्या सापि नोदवाह्या विविधाविषकन्यका॥

(मुहूर्त गणपति)

लग्ने सौरी रविः पुत्रे धर्मस्थो धरणिसुतः।
अस्मिन् योगे तु जाता स्त्री सा भवेद् विषकन्यका॥

(योगजातक)

ये दोनों उद्धरण जातकालंकार के सम्बन्धित प्रकरण से पूरा मेल खाते हैं। अतः यह योग निर्विवाद है।

विषकन्या योग परिहार

लग्नादिन्दोः शुभो वा यदि मदनपतिर्द्यूनयायी विषाख्या
दोषं चैवानपत्यं तदनु च नियतं हन्ति वैधव्यदोषम्।
इत्थं ज्ञेयं ग्रहज्ञैः सुमतिभिरखिलं योगजातं ग्रहाणा-
मार्यैरार्यानुमत्या मतमिह गदितं जातके जातकानाम्॥३॥

यदि लग्न या चन्द्रमा से सप्तम स्थान में सप्तमेश स्वयं स्थित हो अथवा लग्न चन्द्र से सप्तम में शुभग्रह स्थित हों तो विषकन्या दोष की शान्ति हो जाती है। तव कन्या निःसन्तानता व वैधव्य दोष से रहित हो जाती है।

इस प्रकार मैंने (गणेश कवि) आर्यों की अनुमति के अनुसार अर्थात्

पूर्व विद्वानों के मत के आधार पर यह योगादि विवेचन किया है। विद्वान् लोग बुद्धिपूर्वक इस प्रकार फलादेश करें।

विषकन्या दोष का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। यदि संयोग-वशात् तिथि जन्य व ग्रह जन्य योग एक साथ किसी की कुण्डली में हों तो बहुत भयंकर परिणाम होते हैं। प्रायः विषकन्या मातृकुल व पति कुल—दोनों ही स्थानों पर व्याघात करने वाली होती है।

लेकिन लग्न से सप्तमेश या चन्द्र से सप्तमेश स्वक्षेत्री, बली हो अथवा सप्तम स्थानों में शुभ प्रभाव खूब हो तो यह योग कट जाता है। पाराशर होरा में कहा गया है—

सप्तमेशः शुभो वापि सप्तमे लग्नतोऽथवा।
चन्द्रतो वा विषं योगं विनिहन्ति न संशयः॥

(पाराशर होरा)

यह स्थिति केवल विषकन्या दोष का ही परिहार नहीं करती अपितु फलित ग्रन्थों में प्रोक्त अन्य निःसन्तान योगों या वैधव्य योगों का भी परिहार करती है। कहा गया है—

'लग्नाद् विधोर्वा यदि जन्मकाले,
शुभग्रहो वा मदनाधिपश्च।
द्यूनस्थितो हन्त्यनपत्यदोषं,
वैधव्यदोषं च विषांगनाख्यम्॥'

(होरारत्नम्)

ऐसी कन्या की कुण्डली में यदि परिहार न भी मिले तो पहले वह सावित्री का व्रत करती रहे, फिर वटवृक्ष या कुम्भ या नारायण विवाह करवाकर बाद में चिरजीवी योगों वाले वर से विवाह करे।

अब एक शंका हमारे मस्तिष्क में आ रही है। जब मंगलीक दोष दोनों की कुण्डलियों में हो सकता है तो क्या विषकन्या योगों में यदि **'विषपुत्र'** हो जाए तो क्या दोनों का विवाह परम शुभ होगा, जैसाकि मंगलीक योग में होता है—

'यस्मिन् योगे समुत्पन्ना पतिं हन्ति कुमारिका।
तस्मिन् योगे समुत्पन्नो पत्नीं हन्ति नरोऽपि च॥'

(पाराशर होरा, वही)

जिन तिथि वार नक्षत्रों के विशेष समन्वय में उत्पन्न कन्या विष

कन्या होगी, तब उन दिनों लड़का न पैदा हो, ऐसी कोई व्यवस्था तो इस संसार में नहीं है, तब वह पुत्र **'विषपुत्र'** होगा। यदि दोनों समान प्रकार के वर कन्या का मेल हो तो शुभ होगा या नहीं ? इस विषय में जिज्ञासु पाठक प्रयत्नपूर्वक परीक्षा करें। क्योंकि पाराशर ने उक्त श्लोक में मंगलीक योग का नाम नहीं लिया है। अतः विषकन्या योग का यह भी एक परिहार हो सकता है।

हृद्यैः पद्यैर्गुम्फिते सूरितोषे
ऽलङ्काराख्ये जातके मञ्जुलेऽस्मिन्।
कन्याध्यायः श्रीगणेशेन वर्यै
र्वृत्तैर्युक्तो वह्निसंख्यैर्विषाख्यः ॥४॥

प्रस्तुत विषकन्याध्याय तीन (वन्हि) श्लोकों में समाप्त हुआ। शेष अर्थ पूर्ववत् है।

॥ इति पं० सुरेशमिश्रकृतायां नवाख्यायां जातकालंकारव्याख्यायां विषकन्याध्यायश्चतुर्थः ॥

[५]

आयुर्दायाध्याय:

आयु ज्ञान की आवश्यकता :

आयुर्मूलं जन्मिनां जीवनं च
ह्याजीवानां निर्जराणां सुधेव।
एवं प्राहुः पूर्वमाचार्यवर्या-
स्तस्मादायुर्दायमेनं प्रवक्ष्ये ॥१॥

सभी मनुष्यों का जीवन उनकी आयु की विस्तार सीमा ही है। जिस प्रकार देवताओं के लिए अमृत ही देवत्व का आधार है। अर्थात् छोटे से छोटे देवता से लेकर सुर गुरु (बृहस्पति) पर्यन्त अमृत से ही उनका अमरत्व है, उसी प्रकार मनुष्यों का मनुष्यत्व जीवन व मरण में ही निहित है। इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने कहा है। अतः मैं (गणेशकवि) समस्त आयुर्दाय के विषय में अब बताने जा रहा हूं।

दीर्घायु के योग :

लग्नाधीशोऽतिवीर्यो यदि शुभविहगैरीक्षितः केन्द्रयातै-
र्दद्यादायुः सुदीर्घं गुणगणसहितं श्रीयुतं मानवानाम्।
सौम्याः केन्द्रालयस्था जनुषि च रजनीनायके स्वीयतुङ्गे
वीर्याढ्ये लग्ननाथे वपुषि च शरदां षष्टिरायुर्नराणाम् ॥२॥

यदि जन्म लग्न का स्वामी अति बलवान् होकर, शुभग्रहों से दृष्ट हो और वे दृष्टिकारक शुभग्रह केन्द्र स्थानों में हों तो मनुष्य को बहुत लम्बी आयु मिलती है। साथ ही साथ ऐसा व्यक्ति अनेक गुणों से सम्पन्न व श्रीमान् समाजश्रेष्ठ होता है।

यदि जन्म समय शुभग्रह केन्द्र स्थानों में स्थित हों और चन्द्रमा अपनी उच्च स्थिति में वृषराशि में हो, साथ ही लग्नेश बलवान् हो अथवा लग्नेश लग्न में हो तो मनुष्य की आयु ६० वर्षों की होती है।

सामान्यत: आयु के तीन खण्ड ज्योतिष सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। दीर्घ, मध्य व अल्प आयु योगों में क्रमश: पहले ९६ वर्ष, ६४ वर्ष व ३२ वर्ष आयु सीमा मानी जाती थी। बाद में फलदीपिका प्रभृति ग्रन्थों में सामान्यत: ३०, ६० व ९० वर्षों को माना जाने लगा है। लेकिन आजकल व्यवहार में देखा जाता है कि प्राचीनकाल की सुदीर्घायु या परमायु (१२० वर्ष) तो स्वप्न की वस्तु हो गई है। फिर भी 'पश्येम शरद: शतम्' के आधार पर सौ का अंक छूने वाले लोग भी आज हजारों में से विरले ही होते हैं। अत: आजकल अल्पायु ३० वर्ष, मध्यायु ५० वर्ष व दीर्घायु ७० वर्ष भी मान लें तो हानि नहीं होगी। दीर्घमध्याल्प शब्द वास्तव में संख्यात्मक वर्षों को रेखांकित न कर सामान्यत: स्वीकृत अवधि को ही संकेतित करते हैं। लम्बी उम्र तो वही है जिसे जनसमुदाय लम्बी माने।

आशय यह है कि अल्पायु योग ३०-३५ वर्ष, मध्यायु ४५-५० वर्ष व दीर्घायु ६५-७० वर्ष व सुदीर्घायु ७५-८५ वर्ष मानी जा सकती है।

आयु प्रकारों में ग्रह योगों से उत्पन्न आयु अर्थात् योगायु सर्वश्रेष्ठ है। यदि इसमें इदमित्थतया का आग्रह न किया जाय तो सामान्यत: जीवनावधि का ठीक-ठीक विस्तार मोटे तौर पर बताया जा सकता है। जैमिनीय मत की भी खण्डात्मक आयु इसी श्रेणी में रखी जा सकती है। लेकिन आयु का स्पष्टीकरण तो मनबहलाव ही है।

इसके बाद दशायु का विचार करना चाहिए। पाराशरीय मत का अध्ययन कर मारक दशान्तर्दशा का विचार कर व योगायु से प्राप्त अनुमान के साथ उसका समन्वय कर मारक दशा का निर्णय करना चाहिए। इस विषय में हम अपने **'आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य'** एवं **'लघुपाराशरी विद्याधरी'** में खुलकर लिख चुके हैं।

'इतने ही वर्ष की आयु होगी' हम इसके पक्षधर नहीं हैं। आयु तो योगिगम्य पदार्थ है। तथापि ज्योतिष शास्त्र की सहायता से हम मार्ग-निर्देश काफी सटीक ढंग से ले सकते हैं।

लग्न शरीर है व चन्द्रमा प्राण है। देह व प्राण की मजबूती आयु को बढ़ाती है। इन पर यदि शुभ प्रभाव भी हो तो आयु और बढ़ जाएगी।

लग्नेश की अति बलवत्ता होने पर आयु दीर्घ होती है, यह निर्विवाद

है। यदि लग्नेश बली होकर लग्न में ही बैठ जाए या केन्द्र में हो और शुभग्रह केन्द्र त्रिकोणों में बैठकर उसे देखते हों तो व्यक्ति लम्बे समय तक सुख भोगते हुए जीवित रहेगा।

अव लगभग यही वात श्लोक में दूसरे योग में वताई गई है। वहां लग्नेश सामान्य बली भी लग्न में हो या वीर्ययुक्त होकर कहीं भी हो तो केवल ६० वर्ष की आयु ही क्यों? हमारे विचार से दूसरे योग में भी दीर्घायु ही होगी। यदि वर्ष संख्या का आग्रह न करें तो ये योग उत्तम हैं। संक्षिप्त आयु विचार के लिए हमारी **'जन्मपत्री स्वयं बनाइए'** का सम्बद्ध प्रकरण देखें।

अपनी बात की पुष्टि के लिए हम पाठकों के समक्ष कुछ उदाहरण रखना चाहते हैं। हमारे **'जैमिनिसूत्र शान्तिप्रिय भाष्य'** के पृ० ११२ पर पं० जवाहरलाल नेहरू की कुण्डली देकर आयु विचार किया गया है। वहां कर्क लग्न में लग्नेश चन्द्रमा है। अत: **'वीर्याढ्ये लग्ननाथे वपुषि च'** की शर्त पूरी होती है। **'सौम्याः केन्द्रालयस्था'** के अनुसार चतुर्थ में शुक्र व वुध भी हैं। अत: जातकालंकार के योगानुसार ६० वर्ष की आयु होनी चाहिए। हमारे विचार से प्राचीन मध्यायु (लगभग ७२ वर्ष) और आजकल की दीर्घायु होनी चाहिए। वास्तव में इन्हें ७५ वर्ष की आयु मिली थी। अत: वर्ष संख्या का आग्रह नहीं करना चाहिए।

सत्तर-अस्सी वर्ष की आयु :

सौम्याः केन्द्रालयस्था वपुषि सुरगुरौ लग्नतो वा सुधांशो-
रायुर्युक्तं न दृष्टं न च गगनगतैः सप्ततिर्वत्सराणाम्।
याता मूलत्रिकोणे शुभगगनचराः स्वीयतुङ्गे सुरेज्ये
लग्नाधीशेऽतिवीर्ये गगनवसुसमातुल्यमायुर्नराणाम्॥३॥

जन्म लग्न में सभी शुभ ग्रह (बु० बृ० शु० या कोई दो) यदि केन्द्र स्थानों में स्थित हों या चन्द्र लग्न में ये केन्द्र स्थानों में हों और विशेषतया बृहस्पति लग्न में हो और अष्टम स्थान पर किसी भी ग्रह की दृष्टि या योग न हो तो ७० वर्ष की आयु होती है।

यदि सभी शुभ ग्रह अपने मल त्रिकोण में हों, बृहस्पति अपनी उच्च

राशि कर्क में हो और लग्नेश अति वली हो तो अस्सी वर्ष की आयु होती है।

यहां पहले हम पाठकों को संस्कृत की संख्याद्योतन शैली का स्पष्टीकरण कर दें। संस्कृत श्लोकों में सीधे संख्या देकर कार्य साधन होता है, जैसे यहीं श्लोक २ में **'षष्टिरायु:'** कहकर सीधे ६० संख्या बताई है। दूसरे प्रकार में कटपयादि पद्धति का अवलम्बन किया जाता है। इसका सविशेष प्रयोग जैमिनि सूत्रों व अष्टक वर्ग प्रकरण में किया गया है। जैसे 'वालो वलिष्ठो लवणांगमत्सरो' इत्यादि फलदीपिका के अष्टक वर्ग प्रकरण में बाल शब्द का अर्थ ३३ है। तीसरा प्रकार वहुत प्रचलित है और प्राय: संस्कृत के समस्त शास्त्रीय वाङ्मय या ललित साहित्य में इस पद्धति का व्यापक प्रयोग हुआ है। इसमें प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग संख्या वाचक के रूप में किया जाता है। जैसे 'दो' संख्या को वताने के लिए हस्त, पाणि, कर, चक्षु, नेत्र, युग, युग्म आदि कहा जाता है। क्योंकि नेत्र भी दो होते हैं और कर भी दो ही हैं। इसी प्रकार एक के लिए प्रणव, शून्य के लिए आकाश, तीन के लिए गुण, चार के लिए वेद, पांच के लिए तत्त्व, छ: के लिए रस, सात के लिए शैल, आठ के लिए वसु, नौ के लिए निधि व दस के लिए दिक् शब्द व अन्य बहुत से शब्दों का प्रयोग किया जाता है। श्लोक में प्रयुक्त "गगनवसुसमा' का अर्थ इसी आधार पर ८० आता है। गगन अर्थात् ० व वसु अर्थात् ८ (अष्टवसु) अर्थ लेकर **'अंकानां वामतो गति:'** के नियम से इसे ८० पढ़ेंगे। इसी प्रकार सर्वत्र यथाप्रसंग समझना चाहिए।

प्राचीन संस्कृत टीका में द्वितीय चरण में प्रयुक्त **'आयुर्युक्तं न दृष्टं न च गगनगतै:'** में 'गगनगतै' का अर्थ दशमस्थ ले लिया गया है, जो एक मोटी भूल है। दशम में स्थित ग्रह से भला अष्टम स्थान कैसे दृष्ट हो सकता है। पाप दृष्टि भी नहीं होती है। यदि राशि दृष्टि कथंचित मान भी लें तो चर लग्नों में तो दृष्टि बन जाएगी, लेकिन शेषस्थिरादि लग्नों में वह दृष्टि भी नहीं रहेगी। कारण चर राशियां द्वितीयस्थ स्थिर रहित सभी स्थिर राशियों को, स्थिर द्वादशगत चर को छोड़कर शेष चरों को और द्विस्वभाव निजरहित शेष द्विस्वभावों को देखती हैं। यदि इस योग को केवल चर लग्नों तक ही सीमित मानें तो एक बड़ी बाधा और है कि दशमस्थ ग्रह से ही अष्टम भाव युक्त कैसे होगा। जो

ग्रह दशम में है वह अष्टम में भला कैसे रहेगा। अतः यहां इस शब्द का अर्थ 'गगन में रहने वाले या चलने वाले' अर्थात् 'ग्रह' ही है।

तीस-चालीस-साठ वर्ष की आयु :

सौम्ये केन्द्रेऽतिवीर्ये यदि निधनपदं खेटहीनं समाः स्यु-
स्त्रिशत्सौम्येक्षितं चेद्गगनहिमकरैः संयुतोऽथ स्वभे चेत्।
स्वत्र्यंशे चामरेज्ये मुनिनयनमितं स्वर्क्षगे लग्नगे वा
चन्द्रे द्यूने शुभश्चेद्गगनरसमितं कोणगाः सौम्यखेटाः॥४॥

यदि केन्द्र स्थान में बलवान् बुध स्थित हो और अष्टम स्थान में कोई भी ग्रह न हो तो मनुष्य की आयु ३० वर्ष की होती है।

यदि अष्टम स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो दस वर्ष (गगन-हिमकरै) और मिल जाते हैं, अर्थात् ४० वर्ष की आयु होती है।

यदि बृहस्पति स्वराशि, स्वद्रेष्काण में हो तो मनुष्य की २७ वर्ष की आयु होती है।

यदि चन्द्रमा निज राशि या लग्न में हो और सप्तम स्थान में शुभ ग्रह स्थित हो तो ६० वर्ष की आयु होती है।

इस श्लोक में बताए गए योग त्वरित निर्णय पर आधारित प्रतीत होते हैं। लग्न में कोई भी बली शुभ ग्रह और अष्टम पर शुभ दृष्टि या शुभ योग निश्चय से अल्पायु नहीं देते हैं। यह अनुभव स्वयं पाठक भी कर सकते हैं। यह पुस्तक माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी भी पढ़ते हैं अतः वे अवश्य ही भ्रम में पड़ेंगे कि लग्न में या केन्द्र में बली शुभ ग्रह का होना आयुवर्धक व अरिष्टनाशक है। यदि वह बली हुआ तो फिर क्या कहना! ग्रन्थकार कहते हैं कि अष्टम पर शुभ दृष्टि हो। शुभ ग्रह बुध के अतिरिक्त हैं पूर्ण चन्द्र, बृहस्पति, शुक्र। 'गगनहिमकरैः' में बहुवचन का प्रयोग द्योतित करता है कि कम-से-कम तीन शुभ ग्रहों की दृष्टि तो होनी ही चाहिए। अस्तु, हम दो शुभ ग्रहों की भी दृष्टि मान लें। तब चन्द्र या शुक्र में से सप्तम दृष्टि के लिए इनकी द्वितीय स्थिति या गुरु की पंचम, नवम दृष्टि के लिए क्रमशः चतुर्थ व द्वादश में होगी। द्वादश, षष्ठ, अष्टम में शुभ ग्रह आयुष्यवर्धक हैं। केन्द्र में गुरु हुआ तो और आयु बढ़ेगी। अतः इस योग में ठीक मध्यम दर्जे की आयु तो निश्चित

ही है, यदि अन्य योग भी पड़े हों तो फिर अधिक आयु भी हो सकती है, एक उदाहरण से इस बात को समझिए—
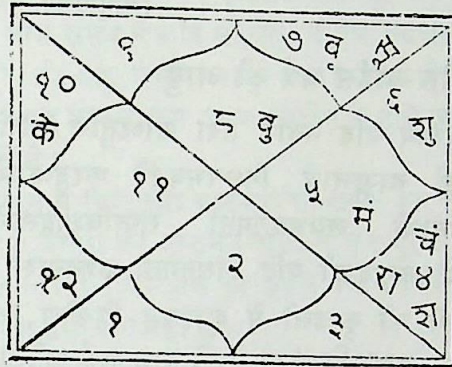
इस कुण्डली वाले महोदय की आयु ६१ वर्ष रही थी। अर्थात् खूब लम्बी आयु पाई। लग्न में बुध है। केन्द्रगत, अनस्त, विततरश्मि, अधिष्ठित राशीश मंगल से पूर्ण दृष्ट है, मंगल बुध का तात्कालिक मित्र भी है, अतः बली हुआ। अष्टम स्थान ग्रह रहित है, वहां बृहस्पति शुभ ग्रह की पूर्ण दृष्टि भी है। तब ४० वर्ष की आयु होनी चाहिए थी, लेकिन इनकी मृत्यु ६१ वर्ष की आयु में हुई थी। इस कुण्डली का आयु विचार हम अपनी **लघुपाराशरी विद्याधरी** पृ० १०८ पर कर चुके हैं।

यही बात द्वितीय योग के विषय में है। यदि बृहस्पति स्वराशि में स्वद्रेष्काण में ही हो तो २७ वर्ष की आयु होगी। स्वराशि में अर्थात् धनु व मीन में गुरु की राशि का द्रेष्काण तो होता नहीं है। तब इन दोनों पदों को स्वतन्त्र मानकर ही चलना होगा। स्वराशि में बृहस्पति तो बहुत-सी कुण्डलियों में होगा। पीछे विवेचित पं० नेहरू की कुण्डली में षष्ठ में धनुगत गुरु है। इसी प्रकार रामकृष्ण परमहंस, लोकमान्य तिलक आदि की कुण्डलियों में गुरु स्वक्षेत्री था। **लघुपाराशरी विद्याधरी** के पृ० १२४ पर उद्धृत लग्न में बृहस्पति स्वक्षेत्री है, वर्तमान में ये ५३ वर्ष के हैं। पाठक स्वयं विचार करें। हमारे विचार से यह योग अधूरा है। इस योग में बृहस्पति स्वराशि या स्वद्रेष्काण में हो, लग्नेश अष्टम में सपाप हो और अष्टमेश भी वहीं पर हो तब २७ वर्ष

की आयु होती है। ऐसा पं० मुकुन्द दैवज्ञ ने आयुर्निर्णय में कहा है—

'सूरौ स्वर्क्षे स्वत्रिभागेऽथसोप्राङ्गायुर्नाथौ नाशगौ वा निशेशे···।'

(आयुर्निर्णय, पृ० १०४)

अस्सी-चौबीस-बाईस वर्ष की आयु :

कीटे लग्ने सुरेज्ये यदि भवति तदा खाष्टतुल्यं लयेशो
धर्मेऽङ्गे चाङ्गनाथे निधनभवनगे क्रूरदृष्टेऽब्धिहस्ताः।
लग्नाधीशाष्टनाथौ लयभवनगतौ सप्तविंशद्विलग्ने
क्रूरेज्यौ चन्द्रदृष्टौ यदि निधनगतः कश्चनास्ते द्विपक्षाः॥५॥

यदि किसी की कुण्डली में शुभ ग्रह त्रिकोण स्थानों (५, ९) में स्थित हो और बृहस्पति लग्न में हो तथा कर्क (कीट) में जन्म हो तो मनुष्य की आयु ८० वर्ष की होती है।

यदि अष्टमेश लग्न या नवम स्थान में स्थित हो, लग्नेश अष्टम स्थान में क्रूर ग्रहों से दृष्ट हो तो मनुष्य की २४ वर्ष की आयु होती है।

लग्नेश व अष्टमेश यदि दोनों ही अष्टम स्थान में स्थित हों तो २७ वर्ष की आयु होती है।

यदि लग्न में बृहस्पति क्रूर ग्रह से युक्त होकर पड़े और कोई भी ग्रह अष्टम स्थान में हो तो २२ वर्ष की आयु होती है।

यहां **'कोणगाः सौम्यखेटाः'** का अध्याहार पिछले श्लोक से हुआ है। 'कीट' शब्द का अर्थ वृश्चिक व कर्क दोनों ही है। लेकिन कर्क में बृहस्पति की उच्च स्थिति के कारण ही कर्क लग्न की सम्भावना यहां अधिक है। फिर भी वृश्चिक लग्न को एकदम विचार बाह्य नहीं कर देना चाहिए। अकेला बृहस्पति ही लग्न में यदि स्फुटित किरणों वाला, बली या अन्यथा मूल त्रिकोणोच्चादि में स्थित हो तो बहुत से अरिष्टों को दूर करता है। कर्कट लग्न में बृहस्पति षष्ठेश व परम शुभ भाव नवम का अधिपति होकर लग्न में बैठकर ५, ७, ९ भावों को पूर्ण दृष्टि से देखेगा, अतः ऐसा व्यक्ति सुखी व दीर्घायु होना ही चाहिए। लग्न में किसी भी ग्रह की उच्च स्थिति लम्बी आयु प्रदान करती है। जातक पारिजात में कहा गया है—

'यस्य जन्मनि तुंगस्थाः स्वक्षेत्रस्थानमाश्रिताः।
चिरायुषं शिशुं जातं कुर्वन्त्यत्र न संशयः।।'
(जातक पारिजात, ४.७८)

'जिसके जन्म समय में कोई भी ग्रह स्वोच्च, स्वक्षेत्र, मूल कोणादि में स्थित हो तो वह लम्बी आयु वाला होता है। मूल मे प्रयुक्त बहुवचन से ३ ग्रह कम-से-कम उच्च, स्वक्षेत्र में होने चाहिएं, भाव की कोई शर्त नहीं है।'

द्वितीय योग में स्पष्टतया अष्टमेश की लग्न या नवम में स्थिति कहकर बाद में लग्नेश की अष्टम स्थिति व क्रूर दृष्टि कही गई है।

कुछ टीकाकारों ने अष्टमेश की केवल नवम स्थिति मानकर योग बताया है। यह समीचीन नहीं है।

तृतीय योग में लग्नेश व अष्टमेश की अष्टमस्थता को योगकारक बताया गया है। इस योग में २७ वर्ष की आयु बताई गई है।

सत्तर व सौ वर्ष की आयु :

लग्नेन्दू क्रूरहीनौ वपुषि सुरगुरौ रन्ध्रभं खेटहीनं
केन्द्रे सौम्ये खशैलाः सितविबुधगुरु स्याच्छतं केन्द्रगौ चेत्।
वागीशे कर्कलग्ने शतमिह भृगुजे केन्द्रगेऽथार्कसूनौ
धर्माङ्गस्थे सुधांशौ व्ययनवमगते हायनानां शतं स्यात्।।६।।

यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों ही क्रूर ग्रहों से योग न करते हों, लग्न में बृहस्पति स्थित हो, अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो और केन्द्र में बुध स्थित हो तो मनुष्य की आयु ७० वर्ष की होती है।

शुक्र और बृहस्पति यदि केन्द्र में स्थित हों तो मनुष्य की १०० वर्षों
की आयु होती है।
यदि कर्क लग्न में बृहस्पति स्थित हो और शुक्र केन्द्र में हो तो भी
सौ वर्षों की आयु होती है।
यदि शनि नवम या लग्न में स्थित हो और चन्द्रमा नवम या द्वादश
भाव में स्थित हो तो भी सौ वर्षों की आयु होती है।
लग्न व चन्द्रमा पर क्रूर योग, क्रूर मध्यत्व या अन्यथा अशुभ लक्षण
न हों तो दोनों मनुष्य की आयु को बढ़ाते हैं। यह अच्छे स्वास्थ्य का
भी प्रतीक है। प्रश्न मार्ग में ऐसा ही कहा गया है।

चन्द्रस्यारिमृतिव्ययस्थितिरसन्मध्यास्थितीक्षान्वयाः,
क्षीणत्वं तनुगत्वमत्र निजनीचाप्तिश्च दोषा इमे।
पूर्णत्वं शुभमध्यवासयुतिदृक्देवेड्यकेन्द्रस्थितिः,
स्थानं तुंगगृहे युतिश्च गुरुणा सांगे विशेषाद् गुणाः ।।
(प्रश्नमार्ग ६.२२)

'६, ८, १२ में होना, पाप मध्य, पाप योग, पाप दृष्ट होना, क्षीण होना, लग्न में नीचगत होना ये चन्द्रमा के दोष हैं।

पूर्णत्व, शुभ दृग्योग, मध्यत्व, वृहस्पति से केन्द्रगतत्व, स्वोच्च में होना या गुरु के साथ युति (विशेषतया लग्न में) ये चन्द्रमा के गुण हैं।

शुक्र व वृहस्पति की केन्द्र स्थिति यदि लग्न से केन्द्र में हो तो बहुत उत्तम है। लेकिन शुक्र या गुरु सप्तम में सप्तमेश या द्वितीयेश होकर बैठेंगे तो प्रबल मारक हो जाते हैं, इसका ध्यान रखना चाहिए। पाराशर ज्योतिष का यह सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण है—

'मारकेशत्वदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः ।।'

इस विषय का विस्तृत अध्ययन व उदाहरण हमारी **लघुपाराशरी विद्याधरी** के मारकाध्याय में देखें।

इसके अतिरिक्त बृहस्पति व शुक्र चन्द्रमा से केन्द्र में हों तो भी उत्तम फल दिखाते हैं। लेकिन ये दोनों आपस में केन्द्र में हों और पूर्ण दृष्टि करें अर्थात् समसप्तक में हों तो भी ये आयुष्यवर्धक होते हैं और धनागम की निरन्तरता बनाए रखते हैं।

'गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने' कहकर वराहमिहिर ने गुरु की कर्क लग्न में सचन्द्र स्थिति को विशेषतया आयुष्यवर्धक माना है। इसी बृहज्जातकोक्त योग में बुध, शुक्र की केन्द्र स्थिति भी गृहीत है। अतः इस योग में दीर्घायु या उत्तमायु अवश्य होनी चाहिए। श्लोक इस प्रकार है—

गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने
शशितनये भृगुजे च केन्द्रयाते।
भवरिपुसहजोपगैश्च शेषैः
रमितमिहायुरनुक्रमाद्विना स्यात् ।।
(बृहज्जातक ७.१४)

'कर्क में गुरु व चन्द्र लग्न में हो, बुध शुक्र केन्द्र में व शेष ग्रह (सभी पाप) ३, ६, ११ भावों में हों तो मनुष्य की अमित आयु होती है।'

उक्त योगों में आयु, धन, यश व सुख सभी बढ़ते हैं।

शतायु योग :

धीकेन्द्रायुर्नवस्था यदि खलखचरा नो गुरोर्भे विलग्ने
केन्द्रे काव्ये गुरौ वा शुभमपि निधनं सौम्यदृष्टं शतं स्यात्।
लग्नादिन्दोर्न खेटा यदि निधनगता वीर्यभाजौ सितेज्यौ
पूर्णायुः स्वीयराशौ शुभगगनचराः षष्टिरङ्गोच्चगेऽब्जे ॥७॥

यदि गुरु की राशि (धनु, मीन) लग्न में जन्म हुआ हो, केन्द्र में शुक्र या बृहस्पति स्थित हो, केन्द्र, त्रिकोण व अष्टम में पाप ग्रह न हों, अष्टम व नवम स्थान पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो सौ वर्ष की आयु होती है।

यदि लग्न व चन्द्र से अष्टम स्थानों में कोई ग्रह न हो और शुक्र, गुरु बली हों तो मनुष्य पूर्णायु भोगता है। अर्थात् उसकी आयु १०० वर्ष के ऊपर होती है।

यदि वृष लग्न में चन्द्रमा स्थित हो और शुभ ग्रह स्वराशियों में स्थित हों तो मनुष्य की ६० वर्ष की आयु होती है।

पूर्णायु योग :

कोदण्डान्त्यार्धमङ्गं यदि सकलखगाः स्वोच्चगा ज्ञे जिनांशै-
र्गोस्थे पूर्णे च केन्द्रे सुरपतिभृगुजौ लाभगेऽब्जे परायुः।
शुक्रे मीने तनुस्थे निधनगृहगते सौम्यदृष्टे सुधांशौ
जीवे केन्द्रे शतं स्यादथ तनुगृहपे छिद्रगे पुष्करेऽब्जे ॥८॥

यदि जन्म लग्न धनु के उत्तरार्ध में हो, सभी ग्रह अपनी उच्च राशियों में हों, बुध २४ अंश पर वृष राशि में हो तो मनुष्य की आयु पूर्णायु अर्थात् १२० वर्ष होती है।

यदि बृहस्पति व शुक्र केन्द्र स्थानों में स्थित हों और पूर्ण चन्द्रमा एकादश भाव में हो तो भी मनुष्य की परमायु होती है।

यदि मीन लग्न में शुक्र स्थित हो, अष्टम भाव में स्थित चन्द्रमा को

शुभ ग्रह देखते हों और बृहस्पति केन्द्र में हो तो मनुष्य की सौ वर्ष आयु होती है। श्लोक का अन्तिम चरणार्ध आगे अन्वित है।

'जिन' शब्द का अर्थ २४ है। कारण, जैन धर्म के तीर्थंकरों की संख्या २४ मानी गई है। वुध के १.२४° पर ही होने का क्या स्वारस्य है? तथापि शेष बातें लगभग वही हैं जो सामान्यत: आयुष्यवर्धक मानी जाती हैं। हमारे विचार से प्राय: फलित ग्रन्थों में जितने पूर्णायु, परायु योग बताए गए हैं, उनमें से अधिकांश घटित हो जाते हैं, लेकिन फिर भी इतनी लम्वी आयु देखने में प्राय: नहीं आती। अत: इन योगों में दीर्घायु या अच्छी दीर्घायु ही समझनी चाहिए।

पिचासी वर्ष की आयु :

वागीशे वीर्ययुक्ते नवमभवनगाः सर्वखेटाः शतायुः
कर्केऽङ्गे जीवचन्द्रौ सहजरिपुभवेऽसत्कविज्ञौ च केन्द्रे।
केन्द्रे सूर्यारमन्दा गुरुनवलवगा वाक्पतौ लग्नयाते
व्यष्टस्थानेषु शेषाः शरगजतुलितं स्यान्नराणां तदायुः॥६॥

यदि लग्नेश अष्टम स्थान में स्थित हो, चन्द्रमा दशम स्थान में हो, बृहस्पति बलवान् हो और शेष ग्रह नवम भाव में हों तो मनुष्य सौ वर्ष की आयु पाता है।

यदि कर्क लग्न में वृहस्पति व चन्द्रमा साथ हों, ३, ६, ११, भावों में अशुभ ग्रह हों, शुक्र व वुध केन्द्र में हों, तव भी मनुष्य की आयु सौ वर्ष की होती है।

यदि केन्द्र में सूर्य, मंगल व शनि स्थित हों और वे गुरु के नवांश में हों, बृहस्पति लग्न में स्थित हो, अष्टम में कोई ग्रह न हो, शेष ग्रह प्रोक्त भावों से अतिरिक्त भावों में हों तो मनुष्य की आयु ८५ वर्षों की होती है।

इस श्लोक में बताया गया द्वितीय योग वराहमिहिर प्रोक्त 'अमितायु योग' ही है। इसका विवेचन हम अभी कर चुके हैं। इसी द्वितीय पंक्ति का पाठ 'रिपुभवे-सत्' इस प्रकार का उपलब्ध है। हमारे विचार से वहां पूर्वरूप सन्धि है। और 'असत्' शब्द का ग्रहण है। कारण समझिए। वृहस्पति व चन्द्रमा तो लग्न में वता दिए हैं। शुक्र व

बुध केन्द्र में बताए हैं। तब शेष बचे ग्रह (सू, मं, श, रा, के) भला शुभ कहां हैं। अतः यहां **'सहजरिपुभवेऽसत्कविज्ञौ'** पाठ माना गया है।

अन्य पूर्णायु योग :

क्रूराः सौम्यांशयाता उपचयगृहगाः कातराः कण्टकस्थाः
सौम्या व्योमार्कसंख्या यदि तनुपकुजौ रन्ध्रगौ नो परायुः।
केन्द्रे लग्नेशजीवौ नवसुतनिधने कण्टके नो खलाख्याः
संपूर्णं पापखेटा यदि गुरुजलगा जीवभावे च सौम्याः॥१०॥

यदि क्रूर ग्रह शुभग्रहों के नवांश में उपचय में (३, ६, १०, ११) स्थित हों और वे पापग्रह कातर अर्थात् युद्ध में पराजित हों, साथ ही शुभग्रह १, ४, ७, १० भावों में स्थित हों और लग्नेश व मंगल अष्टम में न रहें तो पूर्णायु होती है।

यदि लग्नेश और बृहस्पति दोनों केन्द्र में हों और ५, ९, ८ व केन्द्रों में अशुभ पापग्रह न हों तो मनुष्य पूर्णायु भोगता है।

'पापखेटा यदि' इत्यादि भाग का सम्बन्ध अग्रिम श्लोक से है।

प्राचीन टीकाकार ने 'कातराः' को 'सौम्याः' का विशेषण मानकर योग की पूर्णता के लिए शुभग्रहों को पराजित होना माना है, जो हमें समीचीन प्रतीत नहीं होता है।

ग्रह का पराजित होना अच्छा फल नहीं देता है। जो ग्रह युद्ध में पराजित हो जाता है, वह अपने शुभ फल को खो बैठता है। मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, व शनि इन पांच तारा ग्रहों का परस्पर युद्ध होता है। युद्ध से तात्पर्य है—युति। यहां किसी एक भाव में साथ रहना तात्पर्य नहीं है। ग्रहयुत्यधिकार सूर्य सिद्धान्त में बताया गया है कि तारा ग्रहों का युद्ध व समागम एवं अस्त होता है। चन्द्रमा के साथ समागम, सूर्य के साथ अस्त और तारा ग्रहों का परस्पर युद्ध होता है। यदि युतिकाल में दोनों ग्रहों के बिम्ब परस्पर केवल स्पर्श करते हों तो 'उल्लेख', परस्पर बिम्ब का अधिकांश ढक लेने पर 'भेद', दूर रहकर भी किरणें मिली हुई दिखें तो 'अंशुविमर्द', दोनों ग्रहों के बिम्बों का अन्तर १°-१° से कम हो तो 'अपसव्य' और अधिक अंशों का अन्तर होने पर 'समागम' नामक युद्ध (युति) होते हैं। प्रायः उत्तरदिक् में स्थित, बहुत किरणों

वाला, कान्तिमान्, बड़े बिम्ब वाला ग्रह **'विजयी'** होता है। और दूसरा पराजित होगा। शुक्र उत्तर व दक्षिण दोनों तरफ 'जयी' होता है। वास्तव में युद्ध, अस्त व समागम ये 'युति' अर्थात् **राशि ग्रहयुति** के ही पर्याय हैं।

यही कारण है कि ग्रह पराजित होगा, वह रुक्ष, मलिनकान्ति, कम रश्मि वाला और छोटे बिम्ब वाला होगा। ऐसा ग्रह मल्लयुद्ध में पराजित योद्धा की तरह स्वयं हताश होता है, तब वह फल नहीं दे सकता। यदि पापग्रह पराजित हुए तो पापफल नहीं देंगे और शुभग्रह पराजित होकर शुभफल नहीं दे सकेंगे। इसी कारण पराजित ग्रह का सम्बन्ध हमने यहां 'पापग्रहों' से माना है। अशुभग्रहों का कातरत्व और बलवान् भावों में शुभग्रह आयुष्यवर्धक होंगे। गणितायु साधन में भी 'युद्ध संस्कार' कर आयुर्भागों में कटौती की ही जाती है।

शतायु व अल्पायु योग

युग्मर्क्षांशे गता वा व्ययधनगृहगाश्चेच्छुभाः शीतभानुः
संपूर्णो लग्नयायी शतमिह जनिनामिन्दिरामन्दिरं स्यात्।
लग्नेशे सौम्ययुक्ते वपुषि च लयपे रन्ध्रगे नान्यदृष्टे
विंशत्केन्द्रे लग्नेशे बलवियुजि तथा लग्नपे त्रिंशदायुः ॥११॥

यदि सभी पापग्रह नवम व चतुर्थ स्थान में स्थित हों, शुभग्रह बृहस्पति की राशि या नवांश में हों, अथवा शुभग्रह समराशि नवांश में हों, शुभग्रह २, १२ स्थानों में हों, चन्द्रमा सम्पूर्ण बिम्ब वाला होकर लग्न में स्थित हो तो मनुष्य विविध प्रकार की धन सम्पत्ति से युक्त होकर सौ वर्षों की आयु भोगता है।

यदि लग्नेश शुभग्रह से युक्त होकर लग्न में स्थित हो और किसी अन्य ग्रह की जिस पर दृष्टि न हो ऐसा अष्टमेश अष्टम में ही स्थित हो तो वीस वर्ष की आयु होती है।

यदि लग्नेश व अष्टमेश दोनों ही बलहीन होकर केन्द्र में स्थित हों तो ३० वर्ष की आयु होती है।

शुभग्रह या समराशि के नवांश में शुभग्रह अच्छा फल देते हैं। लग्न में सम्पूर्णतनु चन्द्रमा अर्थात् पर्णिमा का ग्रहण रहित चन्द्रमा हो तो आयु व स्वास्थ्य को निश्चय से बढ़ाता है। २, ८, १२ स्थानों में शुभग्रह भी आयु के सन्दर्भ में अच्छे होते हैं। लग्न के द्विद्वादिश शुभग्रह (यहां गुरु या समराशि नवांश) लग्न को शुभमध्यत्व प्रदान कर दीर्घायु प्रदान करेंगे। अष्टम स्थान में या तो कोई ग्रह न हो तो भी उत्तम है और शुभग्रह हो तो भी अच्छा है, पापग्रह नहीं होना चाहिए। लग्न से अष्टम में पापग्रह निज आयु को काटता है और स्त्री के अष्टम स्थान में पापग्रह वैधव्य कारक कहा गया है। बृहज्जातक का वचन है— **'क्रूरेऽष्टमेविधवता'** इत्यादि।

फिर भी इस योग में चन्द्रमा की उक्त स्थिति को छोड़कर ४, ९ में पापग्रहों की स्थिति जरूर खटकती है। साथ ही पापग्रह गुरु नवांश या सम नवांश में हो यह वात भी कुछ कम युक्ति युक्त लगती है। वराह पुत्र **पृथुयशा** का कथन है—

ओजांशकस्थितशुभाः सुखधर्मसंस्थाः,
पापास्तु युग्मभवनांशक लग्नसंस्थाः।
चन्द्रो विलग्न भवने यदि पूर्णरश्मि-
र्जातोऽत्र याति शतमायुररोगतां च॥'

(होरासार, ६, ४८)

'४, ९ में शुभग्रह विषमराशि नवांश में हों, पापग्रह समराशि नवांश में चाहे लग्न में भी क्यों न हों। सम्पूर्ण तनु चन्द्र लग्न में हो तो शतायु व नीरोगता होती है।'

अतः यहां जातकालंकार में पापग्रहों की ४-९ में स्थिति को यदि कथंचित् मान भी लें तो भी पापग्रहों की गुरू नवांश वाली बात तो सर्वथा अनुचित है। ज्योतिष का एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि क्रूर ग्रह क्रूर नवांश में या राशि में हों और शुभग्रह शुभराशि नवांश में हों, साथ ही लग्नेश वलवान् हो तो मनुष्य बहुत अच्छी आयु पाता है। पृथुयशा तो इस स्थिति में परमायु मानते हैं—

'क्रूरर्क्षस्थैः क्रूरैः सौम्यक्षेत्रेषु संस्थितैः सौम्यैः।
होरशे च बलाढ्ये जातः परमायुराप्नोति॥'

(होरासार ६, ४४)

अत: पाठक इस योग को परीक्षा करके ही स्वीकार करें। यहां हम पुन: पाठकों को स्मरण करा दें कि उक्त संख्या वर्षों वाले आयुर्योगों में वर्ष संख्या की सटीकता प्राय: नहीं होती है।

अल्पायु योग

इन्दावापोक्लिमस्थे तदनु तनुपतौ निर्बले पापदृष्टे दन्त-
स्तुल्यं ततोऽर्क: खलखगविवरे लग्नगोऽब्जत्रिसंख्यम्।
रि:फे केन्द्रे सुरेज्ये गुरुरिपुसहजे स्यात्सपापेऽङ्गनाथे
रामाब्दं कर्कलग्ने कुजतुहिनकरौ केन्द्ररन्ध्रं ग्रहोनम् ॥१२॥

यदि चन्द्रमा आपोक्लिम भावों (३, ६, ९, १२) में रहे और लग्नेश भी निर्बल और पापदृष्ट हो तो मनुष्य की आयु ३२ वर्ष की होती है। यदि लग्न में सूर्य हो और २, १२ भावों में अन्य पापग्रह हों तो ३० वर्ष की आयु होती है।

यदि बृहस्पति केन्द्र या द्वादश स्थान में हो और लग्नेश पापयुक्त होकर ३, ६, ९ में हो तो केवल तीन वर्ष की आयु होती है।

यदि कर्क लग्न में जन्म हो और मंगल व चन्द्रमा लग्न में ही हों, केन्द्र (४, ७, १०) एवं अष्टम स्थान में कोई भी ग्रह न हो तो भी ३ वर्ष की आयु होती है।

लग्नेश व चन्द्रमा की निर्बलता वास्तव मे आयुष्य नाशक होती है। ऐसा हम पीछे कई स्थानों पर कह चुके हैं। लेकिन फिर भी हम कहेंगे कि किसी एक या दो ग्रहों से बनने वाले योगों में सावधानीपूर्वक विवेचन करना चाहिए। आयु के साधक व बाधक योगों की परीक्षा कर तभी किसी निर्णय पर पहुंचना चाहिए। ऐसी स्थिति में भी बुध, गुरु, शुक्र की स्थिति, शनि (आयुष्य कारक) की स्थिति, लग्न की बलवत्ता और सूर्य लग्नादि से भी विचार करना चाहिए।

इस योग में लग्नेश की भी आपोक्लिम स्थिति यहां स्वीकार की जा सकती है। इस योग में पृथुयशा ४० वर्षों की आयु मानते हैं—

आपोक्लिम स्थिते चन्द्रे लग्नेशे तत्र संस्थिते।
पापेक्षिते बलैर्हीने जीवेद्दश चतुर्गुणान्॥

(होरासार ६, १९)

पीछे भावाध्याय श्लोक १९ की व्याख्या में कर्क लग्न वाली कुण्डली

उद्धृत है। वहां लग्नेश व चन्द्रमा एक ही है और वह द्वादश भाव (आपोक्लिम) में स्थित है। पापग्रह मंगल की उस पर दृष्टि है। अतः जातकालंकार के मत से ३२ वर्ष और होरासार के मतानुसार ४० वर्ष आयु है।

ये सज्जन इस समय लगभग ३४ वर्ष के आसपास हैं। अस्तु, यहां विचार कर देखिए कि यह चन्द्रमा शुक्ल त्रयोदशी का होने के कारण क्षीण नहीं है।

लेकिन एक दूसरा योग देखिए, यह योग भी यहां घटित (अंशतः) है।

'लग्नेशे व्ययसंयुक्ते क्षीणे पापयुतेऽपि वा।
षष्ठिवर्षात्परं नायुर्न च लग्ने बृहस्पतिः ॥' (वही)

'यदि लग्न में बृहस्पति न हो और क्षीण या पापयुक्त लग्नेश व्यय में हो तो ६० वर्ष तक आयु होती है।'

लेकिन चन्द्रमा पापयुक्त या क्षीण नहीं है। अतः और अधिक ही आयु होनी चाहिए। चन्द्र व लग्नेश दोनों ही शनि के नवांश में हैं और ६, ८, १२ में स्थित हैं। बस, लग्नेश पापयुक्त नहीं है। अतः ५८ वर्ष से अधिक ही आयु होनी चाहिए—

'शन्यंशे लग्नेशे निधनेश्वरसंयुते निशानाथे।
षष्ठेऽष्टमव्यये वा जातस्य परमायुरष्टपचाशत् ॥'

अतः हमारे विचार से इस कुण्डली वाले मनुष्य की मध्यमायु होनी चाहिए। जैमिनीय मत से भी इनकी आयु ६० वर्ष के आस-पास आती है। एक बात और कहना चाहते हैं। सामान्यतः १, २, ३, ४ भावों में चार या अधिक ग्रह हों तो लम्बी आयु; ५, ६, ७, ८, भावों में हों तो ६० वर्ष व शेष भावों में यह स्थिति हो तो अल्पायु होती है। यह नियम ध्यान में रखना चाहिए। इस कुण्डली में पंचम में ३ ग्रह, सप्तम में २ व अष्टम में १ ग्रह है, अतः ५—८ खण्ड में कुल ६ ग्रह हैं, अतः ६० वर्ष के लगभग (मध्यमायु) सिद्ध होती है। अतः बहुमत सम्मत मध्यमायु बताकर, मारक दशा के समन्वय से निश्चित अन्त समय बताया जा सकता है। इसी पद्धति का उपयोग पाठकों को करना चाहिए। केवल एक योग से ही जिज्ञासु की भविष्यवाणी करना दैवज्ञ के पद एवं जिज्ञासु के मन को हानि पहुंचाएगा।

यहां हम अपनी अनुभूत बात भी पाठकों को वताना चाहते हैं। उक्त भाव चतुष्टय में ही ग्रह संख्या का विचार करना चाहिए। अथवा सभी ग्रह केन्द्र में हों या अधिक ग्रह हों तो दीर्घायु, पणफरों में अधिक ग्रह हों तो मध्यायु व आपोक्लिमों में अधिक ग्रह हों तो अल्पायु समझनी चाहिए।

यदि सभी ग्रह या कम-से-कम ७ ग्रह अदृश्यार्ध में हों तो मनुष्य की आयु ७० के आस-पास होती है। यह बात हमने कई जगह परखी है। यदि अष्टम से द्वादश भावों तक लगातार ग्रह हों तो मनुष्य ८५ से ऊपर ही जाता है।

अब पुनः उक्त कुण्डली को लें। अष्टमेश शनि पंचम में दीर्घायु-कारक, सूर्य का मित्र लग्नेश दीर्घायु, दशमेश स्वराशि में दीर्घायु, अष्टम में शुभ ग्रह व दृष्टि दीर्घायुप्रद योग भी पड़े हैं। जैमिनीय मत से लग्न, चन्द्र, शनि व होरा एवं अष्टमेश की राशि स्थिति वशात् भी दीर्घायु सिद्ध होती है। अतः ऊहापोहपूर्वक संगति बिठाकर ही फलादेश करना चाहिए। आयु के विविध वर्ष मानों एवं गणितायु के साधन का ज्ञान प्राप्त करने हेतु हमारा **आयुर्निर्णय अभिनव भाष्य** का अध्ययन अवश्य सहायक होगा।

अति अल्पायु योग :

रामाब्दं स्याल्लयेशे वपुषि च निधनं सौम्यहीनं खवेदाः
लग्नेशो रन्ध्रयातो वपुषि निधनपः स्यान्नृणां बाणसंख्यम्।
नक्रे तिग्मांशुमन्दौ सहजरिपुगतौ कण्टके रन्ध्रनाथे
पारावाराब्धिसंख्यं तदनु शुभखगाः सल्लवर्क्षेऽत्र खाग्निः ।।१३।।

यदि अष्टमेश लग्न में हो और अष्टम स्थान में शुभग्रह न हो तो ४० वर्ष की आयु होती है।

लग्नेश अष्टम स्थान में हो और अष्टमेश लग्न में गया हो तो ५ वर्ष की आयु होती है।

मकर राशि में सूर्य व शनि तृतीय या षष्ठ स्थान में हों और अष्टमेश केन्द्र में गया हो तो ४० वर्ष की आयु होती है।

यदि शुभ ग्रह शुभ नवांश में हों या शुभग्रह की राशि में हों तो ३० वर्ष की आयु होती है।

सामान्यत: ६, ८, १२ भावों में से अष्टम भाव सर्वाधिक पापी व अशुभ है। फिर भी त्रिकेश (६, ८, १२) जिस भाव में बैठेंगे, उसे ही बिगाड़ते हैं। लेकिन अष्टमेश यदि लग्न में हो और लग्नेश अष्टम में हो तो आयु भाव व शरीर दोनों ही बिगड़ेंगे, अत: अल्पायु होती है। लेकिन लग्नेश व अष्टमेश यदि लग्न या अष्टम में साथ-साथ बैठें तो अच्छी आयु होती है। शुभदृष्टि योग हो तो और भी बढ़ोत्तरी हो जाती है।

श्लोकोक्त अन्तिम योग बचकाना दिखता है। शुभ ग्रह बुध, बृहस्पति व शुक्र हैं। यदि ये परस्पर शुभ राशि या नवांश में होंगे तो उत्तम क्षेत्र सम्बन्ध अर्थात् बुध किसी दूसरे शुभ की राशि में या गुरु, शुक्र आदि परस्पर एक-दूसरे की राशि में या निज राशि में रहेंगे, तब श्रेष्ठ क्षेत्र सम्बन्ध बनाकर आयु, धन व धर्म की वृद्धिकारक होंगे। अत: केवल इसी बात से योग नहीं बनता है।

वास्तव में किसी भी कुण्डली में आयुवर्धक व आयु हानिकारक योगों की सूची बनाकर अधिकता के आधार पर निर्णय करना चाहिए।

मध्यमायु योग :

क्रूरैर्दृष्टेऽङ्गनाथे यदि शुभविहगा वीर्यवन्तः सुधांशौ
संस्थे सौम्ये गणे चेद्गुणमुनितुलितं रन्ध्रगैर्मध्यमायुः।
स्याच्चन्द्रादह्नि पापैरथ तपनसुते द्व्यङ्गलग्ने हि याते
रिःफेशे रन्ध्रनाथे यदि बलरहिते कङ्कपत्राक्षिसंख्यम् ॥१४॥

यदि लग्नेश पर क्रूर ग्रहों की दृष्टि हो और शुभग्रह बलवान् हों, चन्द्रमा शुभग्रहों के वर्ग में गया हो तो मनुष्य की आयु ७३ वर्ष की होती है।

यदि चन्द्रमा से अष्टम स्थान में पापग्रह हों और दिन के समय जन्म हुआ हो तो मनुष्य की मध्यमायु होती है।

यदि द्विस्वभाव लग्न में जन्म हो और शनि वहीं पर हो, द्वादशेश व अष्टमेश निर्बल हों तो २५ वर्षों की आयु होती है।

प्रथम योग से सम्बन्धित एक कुण्डली यहां प्रस्तुत है। इनकी मृत्यु ७३ वर्ष की आयु में हुई थी—
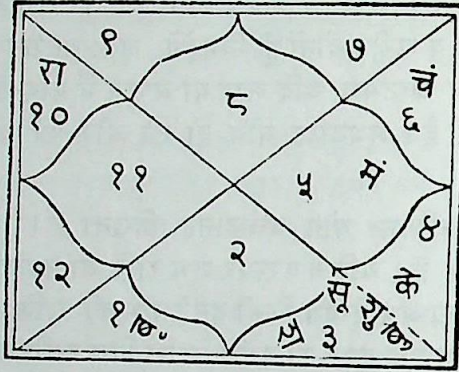
यहां लग्नेश स्वयं क्रूर (निसर्ग) होकर शनि से दृष्ट है। यहां कई ग्रहों की दृष्टि का अन्वेषण नहीं हो सकता है। पाप ग्रह (मं०, श०, रा०) में से राहु की दृष्टि विवादास्पद है और मंगल स्वयं लग्नेश है। सूर्य की दृष्टि हो सकती थी; लेकिन यहां योग बनाने के लिए शनि की दष्टि भी सक्षम है। यहां शुभग्रह निज वर्ग या शुभ वर्ग में स्थित है। चन्द्रमा अधिकांशतः शुभ वर्गों में है। अतः योग पूर्णतया घटित होता है।

लेकिन इस बात की अन्य ढंग से भी परीक्षा कर लेनी चाहिए।

लग्नेश व अष्टमेश स्थिर द्विस्वभाव राशि में हैं अतः दीर्घायु, लग्न व चन्द्र भी स्थिर द्विस्वभाव राशियों में अतः दीर्घायु, शनि चन्द्र द्विस्वभावों में अतः मध्यमायु सिद्ध होती है। लग्न व होरा लग्न (मीन) भी स्थिर द्विस्वभाव में हैं अतः दीर्घायु सिद्ध होती है। **'संवादात्प्रामाण्यम्'** के आधार पर दीर्घायु योग सिद्ध होता है। दीर्घायु ६४ वर्ष से ऊपर होती है। दुर्गादासीय मत से यहां खण्ड ७२ वर्ष होगा। मृत्यु के समय अष्टमेश बुध में द्वादशेश व सप्तम भावेश (मारकेश) शुक्र की अन्तर्दशा चल रही थी। यहां पाराशरी का नियम भी पूर्णतया घटित हो रहा है। **'तदीशितुस्तत्रगताः'** अर्थात् मारकेश होकर वहीं बैठें। **'पापिनस्तेनसंयुताः'** इनके साथ बैठे पापग्रह (पाराशर मत से) मारक होंगे। यहां अष्टमेश बुध पापतम है और मारकेश शुक्र के साथ

है। साथ ही शुक्र में द्वादश भावेशत्व भी है जो उसकी मारकता को वढ़ाता है।

'तेषामसम्भवे साक्षाद् व्ययाधीशदशास्वपि।'

साथ ही अष्टमेश दशा व व्ययेश का सम्बन्ध भी निश्चय से इस समय में मरण को रेखांकित कर देता है। अतः हमने कई जगह अन्यत्र कहा है कि जैमिनीय आयु खण्ड व पाराशरी दशा सिद्धान्तों की तुलना कर प्राप्त होने वाले निष्कर्ष बड़े चमत्कारिक होते हैं।

पचास-पचपन वर्ष की आयु :

कर्केऽङ्गे सप्तसप्तौ खलविहगयुते पुष्करस्थे द्विजेशे
केन्द्रे याते सुरेज्ये शरविशिखमितं पुष्करे नीरगे वा।
सौम्ये पीयूषभानौ व्ययनिधनगते देहगे वा कवीज्या-
वेकर्क्षे व्योमबाणैर्व्ययरिपुनिधने लग्ननाथाढ्यचन्द्रे ॥१५॥

यदि कर्क लग्न में जन्म हो और सूर्य लग्न में ही स्थित हो, चन्द्रमा क्रूर ग्रहों से युक्त होकर दशम स्थान में हो और बृहस्पति केन्द्र स्थानों में गया हो तो ५५ वर्ष की आयु होती है।

यदि दशम या चतुर्थ स्थान में बुध हो, चन्द्रमा लग्न, द्वादश या अष्टम भाव में हो और गुरु व शुक्र एक राशि में स्थित हों तो ५० वर्ष की आयु होती है।

'व्ययरिपुनिधने' इत्यादितः आगे अन्वय होगा।

साठ वर्ष की आयु :

शन्यंशे लग्ननाथे भुजगशरमितं स्यादथो सौम्यखेटा
रन्ध्रोना देहनाथो व्ययरिपुनिधने पापयुक् षष्टिरायुः।
राशीशो लग्ननाथो दिनमणिसहितो मृत्युगो वाक्पतिश्चे-
न्नोकेन्द्रे षष्टिरायुर्वपुषि दिनपतिः शत्रुभौमान्वितश्चेत् ॥१६॥

यदि लग्नेश व चन्द्रमा एक साथ ६, ८, १२ स्थानों में हों, लग्नेश शनि की नवांश राशि में हो तो ५८ वर्ष की आयु होती है।

यदि शुभग्रह अष्टम को छोड़कर अन्यत्र स्थित हों, पापयुक्त लग्नेश ६, ८, १२ स्थानों में हो तो ६० वर्ष की आयु होती है।

यदि सूर्य लग्न में शत्रु ग्रह या मंगल से युक्त हो, बृहस्पति बलहीन हो, चन्द्रमा पंचम या द्वादश स्थान में हो तो ७० वर्ष की आयु होती है। अग्रिम श्लोक से सम्वन्ध है।

पीछे इसी अध्याय के श्लोक १२ में विवेचित कर्क लग्न की कुण्डली में चन्द्रमा लग्नेश होकर द्वादश भाव में शनि के नवांश में है। अतः यह योग घटित होता है। वहां के विवेचन में भी हमारा निष्कर्ष लगभग यही था। इस योग में ५८ वर्ष की आयु एवं लग्नेश व्यय में पापदृष्ट होने से ६० वर्ष आयु सिद्ध होती है।

अस्सी व साठ वर्ष की आयु :

वागीशे हीनवीर्ये व्ययतनुजगते यामिनीशे खशैला
धर्मे सर्वैः परायुः खलखगलवगैः केन्द्रयातैरशीतिः।
क्रूरैः क्रूरर्क्षयातैः शुभभवनगतैः सौम्यखेटैः सवीर्ये-
र्लग्नेशे स्यात् परायुः सुतभवनगतैः षष्टिरायुर्नराणाम् ॥१७॥

यदि सभी ग्रह नवम भाव में हों तो परमायु अर्थात् १०० वर्ष से अधिक आयु होती है।

यदि सभी ग्रह क्रूर नवांश में केन्द्र हों तो ८० वर्ष की आयु होती है।

यदि क्रूर ग्रह क्रूर राशि या नवांश में और शुभग्रह शुभ राशि नवांश में हों और लग्नेश बली हो तो परमायु होती है।

यदि सभी ग्रह पंचम स्थान में हों तो ६० वर्ष की आयु होती है।

ऐसे स्थानों पर सभी ग्रह से तात्पर्य सूर्यादि सात ग्रहों से ही होता है। राहु-केतु प्रायः योगविधायक नहीं होते हैं, अर्थात् स्वतन्त्रतया आत्मशक्ति से ये तमोग्रह योग के साधक या बाधक नहीं होते हैं।

क्रूर ग्रहों की स्थिति क्रूर राशि नवांश में व शुभ ग्रहों की शुभ में स्थिति आयु बढ़ाती है। इस योग में पृथुयशा ने भी परमायु मानी है—

'क्रूरर्क्षस्थैः क्रूरैः सौम्यक्षेत्रेषु संस्थितैः सौम्यैः।
होरेशे च बलाढ्ये जातः परमायुराप्नोति॥'

(होरासार, ६.४४)

अन्य दीर्घायु योग :

सारङ्गस्यान्त्यभागे यदि वपुषि गते चाद्यभागे च केन्द्रे
सौम्यैः खेटैः शतं स्याद्वसुसहजसुखे स्याच्चिरायुः समस्तैः।
लग्नात् प्रालेयभानोर्निधनसदनपे रिःफकेन्द्रेऽष्टविंश-
त्केन्द्रे सौम्यग्रहोने यदि मृतिभवने कश्चिदास्ते खरामाः ॥१८॥

यदि लग्न में धनु राशि का नवांश हो और शुभ ग्रह (बु०, बृ०, शु०) केन्द्र में प्रथम नवांश में हों तो सौ वर्ष की आयु होती है।

यदि ३, ४, ८ भावों में सभी ग्रह स्थित हों तो लम्बी आयु होती है।

यदि लग्न व चन्द्र से अष्टमेश द्वादश या केन्द्र स्थानों में स्थित हो तो २८ वर्ष की आयु होती है।

यदि केन्द्र में शुभग्रह स्थित न हों और अष्टम में कोई ग्रह हो तो ३० वर्ष की आयु होती है।

अति अल्पायु योग :

क्षीणे प्रालेयभानौ यदि खलखचरो मृत्युगो मृत्युनाथः
केन्द्रस्थो लग्ननाथो निजबलरहितः खाश्वितुल्यं तदायुः।
सौम्यैरापोक्लिमस्थैर्दिनमणिजविधू वैरिरन्ध्रालयस्थौ
तुल्यै कामांकुशैः स्यादथ धनमृतिगौ रिःफगौ पापखेटौ ॥१९॥

यदि चन्द्रमा क्षीण हो, अष्टम स्थान में कोई पापग्रह स्थित हो, अष्टमेश केन्द्र स्थानों में गया हो और लग्नेश निर्बल हो तो २० वर्ष की आयु होती है।

यदि शुभग्रह आपोक्लिम स्थानों में स्थित हो, शनि व चन्द्रमा ६, ८ स्थानों में स्थित हों तो मनुष्य की आयु २० वर्ष की होती है।

यदि द्वितीय, द्वादश व अष्टम स्थान में पापग्रह स्थित हों और राहु व चन्द्रमा २, १२, ८ में न हों तो २० वर्ष की आयु होती है।

हीनौ स्वर्भानुना वा यदि हिममहसा व्योमनेत्रप्रमाणं
केन्द्रस्थौ सूर्यमन्दौ यदि वपुषि कुजः पुष्पबाणांकुशं स्यात्।
शुक्रेज्यावङ्गयातौ तनयभवनगौ भौमपापावनायु-
र्जन्मेशः सार्कलग्ने खलशुभसहितश्चेक्षितः स्यादनायुः ॥२०॥

यदि सूर्य व शनि केन्द्र स्थानों में स्थित हों और मंगल लग्न में स्थित हो तो २० वर्ष की आयु होती है।

यदि शुक्र व बृहस्पति लग्न में स्थित हों और पंचम स्थान में मंगल किसी अन्य पापग्रह के साथ हो तो जातक आयुहीन होता है।

यदि जन्मराशीश व सूर्य दोनों ही लग्न में स्थित हों और इन पर शुभ व पाप दोनों प्रकार के ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो भी मनुष्य आयुहीन अर्थात् बहुत कम आयु वाला होता है।

आयु योगों की फलीभूतता :

यत्संप्रोक्तं योगजं पूर्वमायु-
र्होरापारावारपारङ्गमज्ञैः ।
तस्मादायुः सारभूतं यदेतत्पुण्या-
चारश्लोकभाजां नराणाम् ।।२१।।

होराशास्त्र के पारंगत विद्वानों ने शास्त्र ग्रन्थों में जो योग आयु योग बताए हैं, उसी का सारांश लेकर हमने यहां इन्हें बताए हैं, लेकिन इन सब योगों व आयु की फलितता उन्हीं लोगों के लिए होती है, जो लोग शुद्धाचरण, सच्चरित्र व धर्मपरक होते हैं।

बलाबलविवेकेन पुष्करालयशालिनाम् ।
सुमनोभिरिदं देश्यमायुर्धर्मादिशालिनाम् ।।२२।।

सभी सूर्यादि ग्रहों के बलावल का विवेक करने के बाद शुद्ध मन वाले दैवज्ञों द्वारा उक्त योगादि को मस्तिष्क में रखकर धार्मिक व्यक्तियों के विषय में यह फलादेश करना चाहिए।

वास्तव में आयुर्योगों की फलीभूतता के लिए अपनी सावधानी, दुर्व्यसनों से दूर रहना और सदाहारी मिताहारी होना आवश्यक है। जो लोग दुराचारी व असदाहारी होते हैं वे समय से पहले ही काल के गाल में समा जाते हैं।

फलदीपिका, सारावली आदि का भी यही मन्तव्य है। व्याव-हारिकता में भी कहा जा सकता है कि दुर्व्यसनों से दूर रहना और

उत्तम पौष्टिक व हल्का भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है और आयुष्यवर्धक है। अतः आयुर्योगों के होते हुए भी यदि दुराग्रहपूर्वक व्यक्ति स्वयं अपने शरीर की हानि कर ले और फिर ज्योतिष को दोष दे तो युक्ति-संगत नहीं होगा। अतः ये सब योग सामान्य परिस्थितियों में बताए गए हैं।

हृद्यैः पद्यैर्गुम्फिते सूरितोषेऽ-
लङ्कारारव्ये जातके मञ्जुलेऽस्मिन्।
आयुर्दायः श्रीगणेशेन
वर्यैर्वृत्तैयुक्तो बाहुपक्षैः प्रणीतः ॥२३॥

प्रस्तुत आयुर्दायाध्याय को सुन्दर २२ छन्दों में गणेश कवि ने विद्वानों के परितोषार्थ कहा है। शेषार्थ पूर्ववत् है।

॥ इति पं० सुरेशमिश्रकृतायां नवाख्यायां जातकालंकारव्याख्यायां
आयुर्दायाध्यायः पंचमः ॥

[६]

व्यत्ययभावफलाध्याय:

लग्नेश से द्वितीय तृतीयेश का योग :

लग्नाधीशेऽर्थगे चेद्धनभवनपतौ लग्नयातेऽर्थवान् स्यात्
बुद्ध्याचारप्रवीण: परमसुकृतकृत्सारभृद्भोगशील: ।
भ्रातृस्थानेऽङ्गनाथे सहजभवनपे लग्नयातेऽल्पशक्ति:
सद्बन्धू राजपूज्य: कुलजनसुखदो मातृपक्षेण युक्त: ।।१।।

यदि लग्नेश धन स्थान में और धनेश लग्न में गया हो तो मनुष्य धनवान्, बुद्धिमान्, आचारकुशल, परम धार्मिक और उत्तम भोगों को भोगने वाला होता है।

यदि तृतीयेश लग्न में हो और लग्नेश तृतीय में स्थित हो तो मनुष्य निर्बल अर्थात् शारीरिक व मानसिक रूप से क्षीण, अच्छे भ्रातृ सुख वाला, राजमान्य, अपने कुल को सुख देने वाला और मातृ पक्ष से युक्त होता है।

पाराशर ज्योतिष में योगकारकता के लिए ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध को बहुत माना गया है। केन्द्र व त्रिकोण स्थानों के अधिपति यदि परस्पर सम्बन्ध करें तो उत्तम योग बनाते हैं। यह सम्बन्ध चार प्रकार का होता है। जब दो ग्रह एक-दूसरे की राशि में रहते हैं; जैसे मेष में बृहस्पति व धनु में मंगल, तो सर्वश्रेष्ठ **क्षेत्र सम्बन्ध** या स्थान सम्बन्ध बनता है। गुणवत्ता की दृष्टि से यह सबसे अच्छा होता है।

इसके बाद दूसरे क्रम पर **'दृष्टि सम्बन्ध'** होता है। अर्थात् दो ग्रह परस्पर पूर्ण दृष्टि से देखें। तीसरा सम्बन्ध **'स्थानस्थ दृष्टि सम्बन्ध'** होता है, अर्थात् अपनी राशि में स्थित ग्रह को राशीश देखे, जैसे मकर में स्थित किसी ग्रह को शनि स्वयं पूर्ण दृष्टि से देखे। चौथा सम्बन्ध **'सहस्थिति सम्बन्ध'** है अर्थात् दोनों ग्रह साथ ही एक भाव में हों। ये चारों सम्बन्ध क्रमश: निर्बल हैं। अत: 'सहस्थिति' सम्बन्ध सबसे निर्बल माना जाता है। यह बल का तारतम्य लोक व्यवहार पर ही आधारित

है। उदाहरणार्थ वे रिश्तेदार जो एक-दूसरे के घरों में आते-जाते हैं और लम्बे समय तक एक-दूसरे के यहां रहते भी हैं तो उनका सम्बन्ध, परस्पर स्नेह व बन्धुता बड़ी होगी। यही क्षेत्र सम्बन्ध है।

वे मित्र जो बड़े गहरे हैं, परस्पर रिश्ता-नाता न होने पर भी एक-दूसरे के सुख-दुःख को पूरी ईमानदारी से बंटाते हैं, वह परस्पर पूर्ण दृष्टि सम्बन्ध है।

तीसरा सम्बन्ध सज्जन मकान मालिक व सज्जन किराएदार का है। जो अपने घर में रहे, राशीश उसके घर में न रहे। यह सम्बन्ध लोक में भी तृतीय श्रेणी का है।

चौथा सम्बन्ध हमसफर जैसा है। जो एक ही भाव में स्थित हैं अतः यह सम्बन्ध चिरस्थायी न होकर सबसे निर्बल माना गया है।

अस्तु, केन्द्र व त्रिकोणों का परस्पर सम्बन्ध सदैव भाग्य को उत्पन्न करता है। केन्द्र भाव विष्णु रूप व त्रिकोण भाव लक्ष्मी रूप हैं। इन दोनों का स्नेह मिलन सदैव खुशहाली को पैदा करेगा। एतदर्थ हमारी **'लघुपाराशरी विद्याधरी'** का अध्ययन सहायक होगा।

लेकिन अन्य भावेशों का भी केवल लग्नेश से सम्बन्ध का क्या फल होता है, इस विषय में जातकालंकार का यह अध्याय बड़ा उपयोगी है। 'व्यत्यय' का अर्थ उलट-पलट ही होता है। लेकिन ग्रन्थकार ने केवल लग्नेश का अन्य भावों से क्षेत्र सम्बन्ध होने का ही फल बताया है।

लग्नेश से जिस भावेश का क्षेत्र सम्बन्ध होगा, उसी भाव का फल प्राणी को अवश्य मिलेगा। इस विषय में हमारी **'भावमंजरी प्रणवाख्या'** एवं **पाराशर होरा** का 'भावेशफलाध्याय' देखना चाहिए।

चतुर्थ-पंचमेश का सम्बन्ध :

तुर्येशे लग्नयाते तदनु तनुपतौ तुर्यगे स्यात् क्षमावान्
ताताज्ञाराजकार्यप्रगुणमतियुतः सद्गुरुः स्वीयपक्षः।
लग्नस्थे सूनुनाथे तनुजपदगते लग्ननाथे मनस्वी
विद्यालंकाढ्ययुक्तो निजकुलविदितो ज्ञानवान् मानसक्तः॥२॥

यदि चतुर्थेश लग्न में हो और लग्नेश चतुर्थ में गया हो तो मनुष्य क्षमाशील, पिता की आज्ञा मानने वाला, राजकार्य में ईमानदार, अच्छे

गुरु से शिक्षा पाने वाला या स्वयं अच्छा गुरु और प्रबल पक्ष वाला होता है।

यदि पंचमेश लग्न में गया हो और लग्नेश पंचम में हो तो मनुष्य स्वाभिमानी, खुद्दार, विद्यावान्, अपने कुल में प्रसिद्ध ज्ञानी और मानी होता है।

षष्ठेश-सप्तमेश का सम्बन्ध :

षष्ठेशे लग्नयाते तदनु तनुपतौ षष्ठगे व्याधिहीनो
नित्यं द्रोहादिसक्तो वपुषि सबलवान् द्रव्यवान् संग्रही स्यात्।
मूर्तीशे कामयाते मदनसदनपे मूर्तिगे तातसेवी
लोलस्वान्तोऽङ्गनायां भवति हि मनुजः सेवकः श्यालकस्य ॥३॥

यदि षष्ठेश लग्न में स्थित हो और लग्नेश षष्ठ स्थान में गया हो तो मनुष्य रोगरहित, उत्तेजित होने वाला, प्रबल विरोधी, सशक्त शरीर वाला, धनी और संग्रह की प्रवृत्ति वाला होता है।

यदि लग्नेश सप्तम में गया हो और सप्तमेश लग्न में हो तो मनुष्य अपने पिता की सेवा करने वाला, स्त्री के प्रति चंचलता रखने वाला और अपने साले के अधीन रहने वाला होता है।

लग्नेश से अष्टमेश व नवमेश का सम्बन्ध :

अङ्गेशे रन्ध्रयाते निधनगृहपतावङ्गगे द्यूतबुद्धिः
शूरश्चौर्यादिसक्तो निधनपदमियाद्भूपतेर्लोकतो वा।
देहाधीशे शुभस्थे शुभभवनपतौ देहसंस्थे विदेशी
धर्मासक्तो नितान्तं सुरगुरुभजने तत्परो राजमान्यः ॥४॥

यदि लग्नेश अष्टम में हो और अष्टमेश लग्न में गया हो तो मनुष्य के मन में जुआ, सट्टा, लॉटरी के प्रति आकर्षण होता है। ऐसा व्यक्ति शूर, चोरी आदि करने वाला और राजा या जनता से मृत्यु प्राप्त करता है।

यदि लग्नेश नवम में और नवमेश लग्न में हो तो मनुष्य विदेश में रहने वाला, धर्माचरण करने वाला, देवताराधन में रत एवं राजाओं द्वारा सम्मानित होता है।

दशमेश व एकादशेश का सम्बन्ध :

कर्मस्थे लग्ननाथे गगनभवनपे लग्नगे भूपतिः स्यात्
ख्यातो लाभे च रूपे गुरुभजनरतो लोलुपो द्रव्यनाथः।
लाभेशे लग्नयाते तनुभवनपतौ लाभसंस्थे सुकर्मा दीर्घायुः
क्षोणिनाथः शुभविभवयुतः कोविदो मानवः स्यात् ॥५॥

यदि दशमेश लग्न में हो और लग्नेश दशम स्थान में स्थित हो तो मनुष्य राजा होता है। ऐसा व्यक्ति सुन्दरता व धन के कारण प्रसिद्ध, गुरु सेवी, धनी लेकिन लोभी अर्थात् खूब ध न-सम्पत्ति का इच्छुक होता है·

यदि एकादशेश लग्न में हो और लग्नेश एकादश में गया हो तो मनुष्य अच्छे कार्य करने वाला, लम्बी आयु वाला, पृथ्वीपति, शुभ व कल्याणकारक वैभव से युक्त व विद्वान् होता है।

ऐसे व्यक्ति की धन-सम्पत्ति व प्रतिष्ठा लोक कल्याणार्थ अथवा सन्मार्ग से अर्जित होती है।

द्वादशेश का लग्नेश से सम्बन्ध :

लग्नेशे रिःफयाते व्ययसदनपतौ लग्नगे सर्वशत्रु-
बुद्ध्या हीनो नितान्तं कृपणतरमतिर्द्रव्यनाशी विलोलः।
इत्थं तातादिकानामपि जनुषि तथा खेचराणां हि योगा·
द्वाच्यं होरागमज्ञैस्तदनु तनुपयुग् भार्गवे राजपूज्यः॥६॥

यदि द्वादशेश लग्न में गया हो और लग्नेश द्वादश स्थान में स्थित हो तो मनुष्य के बहुत से शत्रु होते हैं। ऐसा व्यक्ति बुद्धि से रहित, अतीव कंजूस, चंचल बुद्धि वाला और धन का नाशक होता है।

इसी प्रकार तात, माता, भ्राता आदि सम्बन्धियों के भावों को भी लग्नवत् मानकर पूर्वोक्त प्रकार से उनके सम्बन्ध में भी फलादेश करना चाहिए।

लग्नेश यदि शुक्र से युक्त हो या सम्बन्ध करे तो मनुष्य राजमान्य होता है।

आशय यह है कि पिता का फल विचार करना अभीष्ट है तो दशम भाव को पिता का लग्न मानिए। अगले भावों को क्रमशः द्वितीयादि

भाव मान लीजिए। अब जिस भावेश की दशम में स्थिति हो और दशमेश जिस स्थान में हो, तदनुसार पूर्वोक्त श्लोकों से फलादेश करना चाहिए।

चलते-चलते गणेश कवि जी ने कह दिया है कि लग्नेश यदि शुक्र से योगी अर्थात् सम्बन्धी हो तो मनुष्य राजमान्य अर्थात् यशस्वी, धनी व सुख साधन को प्राप्त करने वाला होता है। लेकिन दोनों साथ हों तो ६, ८, १२ में यह युति न हो तो उत्तम फल देगी, ऐसा समझना चाहिए।

यदि लग्नेश अन्य किसी भाव का भी अधिपति हो और लग्न में बैठे, तब भी पूर्वोक्त सम्बन्धों का फल देगा। इसी प्रकार केन्द्रेश व त्रिकोणेश एक ही ग्रह हो और स्वक्षेत्री हो तो भी इसी प्रकार का योगकारकत्व रहेगा।

ग्रन्थकार का आत्मकथन :

एवं स्वमत्या सुफलप्रबोधं
श्रीजातकालङ्करणं मनोज्ञम्।
वृत्तैरनन्तेशमितैर्निबद्धं
मया मुदे दैवविदामुदारम्॥७॥

इस प्रकार श्री गणेश दैवज्ञ ने अपनी बुद्धि से सुन्दर फलादेश प्रदर्शक जातकालंकार की रचना एक सौ दस श्लोकों में दैवज्ञों की प्रसन्नता के लिए की है।

विद्वानों के प्रति निवेदन :

पुष्करालयवशा गुणसारा
जातकोक्तिरमलेव मराला।
संस्कृता विहरतां भवतां मे
मानसेऽतिसरले सुकवीनाम्॥८॥

यह जातकालंकार नाम से रचित मेरी उक्ति मानसरोवर में निवास करने वाली हंसी की तरह ग्रहों के अधीन रहने वाली, संस्कार युक्त और अमल है। यह उक्ति सज्जनों व सुकवियों के हृदय में विहार करे।

गणेश कवि की उक्ति और हंसी के तुल्यविशेषण यहां प्रयुक्त हैं। पुष्कर, जल एवं आकाश का वाचक है अतः पुष्करालय अर्थात् मानस सर में निवास करने वाली हंसी एवं आकाशचारी ग्रह, दोनों का यहां ग्रहण है। इसी प्रकार गुणों का सार है जिसमें जातकशास्त्रीय गुण एवं हंसी के शारीरिक गुणों का युगपत् ग्रहण है। अमला अर्थात् स्वच्छ उक्ति या स्वच्छ हंसी, संस्कृता अर्थात् स्वभाव से सज्जित हंसी और सुन्दर भाषा से युक्त जातकोक्ति का ग्रहण होता है।

अध्याय समाप्ति :

हृद्यैः पद्यैर्गुम्फिते सूरितोषे-
ऽलङ्काराख्ये जातके मञ्जुलेऽस्मिन्।
भावाध्यायः श्रीगणेशेन वर्यै-
र्वृत्तैर्युक्तोऽष्टाभिरेष प्रणीतः ॥९॥

प्रस्तुत जातकालंकार में सुन्दर व रुचिर आठ पद्यों में निर्मित यह (व्यत्यय) भावफलाध्याय समाप्त हुआ। शेष अर्थ पूर्ववत् है।

अन्त में पाठकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया जाता है कि ग्रन्थारम्भ में गणेश कवि ने यह घोषणा की थी कि इस जातकालंकार की रचना '**शुकसूत्र**' के आधार पर श्लोकबद्ध व्याख्या के रूप में की गई है। लेकिन प्रथम संज्ञाध्याय, तृतीय योगाध्याय, चतुर्थ विषकन्याध्याय एवं पंचम आयुर्दायाध्याय, षष्ठ व्यत्ययभावफलाध्याय का संग्रह स्वोपज्ञता के आधार पर सारावली, बृहज्जातक, होरासार प्रभृति ग्रन्थों से किया है। इस विषय का स्पष्ट निर्देश स्थान-स्थान पर हमने कर दिया है। केवल भावाध्याय से सम्बन्धित 'शुकसूत्र' ही प्राप्त थे जो प्रत्येक श्लोक के साथ यथाप्रसंग दे दिए गए हैं। शुकसूत्रों की संख्या १६० है, जो पीछे आ चुके हैं।

॥ इति पं० सुरेशमिश्रकृतायां नवाख्यायां जातकालंकारव्याख्यायां
व्यत्यय भावफलाध्यायः षष्ठः ॥

[७]

वंशाध्याय:

अभूदवनिमण्डले गणकमण्डलाखण्डलो
श्रुतिस्मृतिविहारभूर्विबुधमण्डलीमण्डनम् ।
प्रचण्डगुणगुर्जराधिपसभाप्रभातप्रभाः
कवीन्द्रकुलभूषणं जगति कान्हजी कोविदः ।।१।।

इस भूमण्डल पर 'कान्हजी' नामक विद्वान् हुए हैं। वे समस्त दैवज्ञ समुदाय में इन्द्र के समान थे। वेद, वेदांग व स्मृतिसम्मत आचार की वे खान थे और विद्वन्मण्डली की शोभा बढ़ाने वाले थे।

अपने सुन्दर सन्धिविग्रहादि राजोचित गुणों से युक्त 'गुर्जर' देश के राजा की सभा को प्रभातकालीन सूर्यातप के समान उद्योतित करने वाले वे कान्हजी नामक विद्वान् कवि श्रेष्ठों में श्रेष्ठ थे।

भारद्वाजकुले बभूव, परमं तस्मात्सुतानां त्रयं
ज्यायाँस्तेष्वभवद् ग्रहज्ञतिलकः श्रीसूर्यदासः सुधीः।
श्रीमान् सर्वकलानिधिस्तदनुजो गोपालनामाऽभव-
च्छ्रीमद्दैवविदां वरस्तदनुजः श्रीरामकृष्णोऽभवत् ।।२।।

भारद्वाज कुलोत्पन्न उक्त कान्हजी कोविदग्रेसर के तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें से सबसे बड़े सूर्यदास नामक विद्वान् दैवज्ञों में श्रेष्ठ गए हैं। इनके छोटे भ्राता श्री गोपाल समस्त कलाओं में निष्णात थे। इनमें सबसे छोटे भ्राता समस्त दैवज्ञों में श्रेष्ठ श्री रामकृष्ण नामक पण्डित हुए हैं।

शाके मार्गणरामसायकधरा १५३५ संख्ये नभस्ये तथा
मासे ब्रध्नपुरे सुजातकमिदं चक्रे गणेशः सुधीः।
छन्दोऽलंकृतिकाव्यनाटककलाभिज्ञः शिवाध्यापक-
स्तत्र श्रीशिवविन्मुदे गणितभूर्गोपालसूनुः स्वयम् ॥३॥

इन तीनों भाइयों में से श्री गोपाल जी के पुत्र छन्दोऽलंकार काव्य नाटक के ज्ञाता एवं सिद्धान्तवेत्ता गणेश कवि ने शिव नामक अपने गुरु की प्रसन्नता के लिए 'सूर्यपुर' में भाद्रपद मास, शक संवत् १५३५ में प्रस्तुत जातकालंकार की रचना की है।

तापीतीरे स्थितेऽर्कारि ब्रध्नाख्ये जातकं पुरे।
बापजीति द्वितीयेन नाम्नेदं गणकेन च ॥४॥

तापी नदी के तीर पर स्थित सूर्यपुर ग्राम में 'वापजी' इस द्वितीय नाम से प्रसिद्ध ज्योतिषी 'गणेश कवि' ने इस जातकालंकार की रचना की है।

यह चौथा श्लोक म०म० पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक **'गणकतरंगिणी'** में उद्धृत किया था। उपलब्ध प्रतियों में यह श्लोक नहीं है। पं० हरभानु ने इस पर संस्कृत टीका भी नहीं की है। लेकिन अधिकारी विद्वान् श्रद्धेय पं० द्विवेदी जी द्वारा प्रस्तुत होने के कारण हमने इसे यहां दे दिया है।

ये पठिष्यन्ति दैवज्ञास्तेषामायुःसुखे शिवम्।
भूयात्कैरवकुन्दाभा सुकीर्तिः सर्वतोदिशम् ॥५॥

जो दैवज्ञ इस जातकालंकार का अध्ययन करेंगे, उन्हें आयु, सुख एवं कल्याण की प्राप्ति होगी और उनकी कुन्द के पुष्प के समान धवल कीर्ति सभी दिशाओं में फैलेगी।

हृद्यैः पद्यैर्गुम्फिते सूरितोषे-
ऽलङ्काराख्ये जातके मञ्जुलेऽस्मिन्।
वंशाध्यायः श्रीगणेशेन वृत्तैर्युक्तो
वेदैः सैकसंख्यः प्रणीतः ॥६॥

गणेश कवि ने प्रस्तुत जातकालंकार में वंशाध्याय की रचना पांच सुन्दर श्लोकों में की है। शेष पूर्ववत् है।

श्लोक सं० ४ को वास्तविक मानने पर ही गणेश कवि के श्लोकानुसार वंशाध्याय के पांच श्लोक बैठते हैं। अन्तिम श्लोक की गणना उन्होंने कहीं भी नहीं की है।

'श्रीविश्वनाथकृपयेह सुरेशमिश्रः,
दिल्लीति नाम्नि नगरे विबुधप्रसादात्।
वैशाखमज्जनदिने भवनन्दचन्द्रे, (१९११)
शाके सुधीजनहितं वचनमभाणीत् ॥'

॥ इति पं० सुरेशमिश्रकृतायां नवाख्यायां जातकालंकारव्याख्यायां वंशाध्यायः सप्तमः ॥

इति शम्

अंग विद्या पर अनूठी रचना

शरीर लक्षण एवं चेष्टाएँ

लेखक : डॉ. सुरेशचन्द्र मिश्र, ज्योतिषाचार्य एम.ए., पी-एच डी.

शरीर लक्षण ज्योतिष शास्त्र का एक प्रमुख अंग है। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य व ज्योतिष वाङ्मय में भाव शरीर लक्षणों के तथ्य बिखरे पड़े हैं। यह भारतीय व विशुद्ध ऋषि प्रदर्शित फलकथन पद्धति है। मानव शरीर पर विद्यमान लक्षण चिह्न, रेखाएँ, तिल, मस्सा, आदि के साथ-साथ विभिन्न अंगों की बनावट, रंगत, सौन्दर्य व लावण्य मानवीय भविष्य के बहुत से अनकहे पहलुओं को छूते हैं। जिस प्रकार जन्मकालीन ग्रहस्थिति से भविष्य निर्धारण होता है, उसी प्रकार लक्षण विज्ञान द्वारा भी भविष्य कथन प्रामाणिक, नितान्त भारतीय व ऋषिसम्मत हैं।

मानव शरीर एक प्रकार से स्वयं ब्रह्माजी द्वारा लिखी गई जन्मकुण्डली है, केवल उसे समझने की विधि का ज्ञान हो तो मनुष्य बिना ज्योतिषी की सहायता के भी खुद भविष्य पढ़ सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में आप पाएँगे:

(1) शरीर लक्षण व चेष्टाओं का प्रामाणिक विवेचन!

(2) शरीर के प्रमुख दस भागों का सरल व सारगर्भित विश्लेषण!

(3) शरीर लक्षणों से धर्म, स्वास्थ्य, वाहन, सम्पत्ति, अधिकार व राजयोगों का निश्चित निर्णय!

(4) शरीरांगो से मानव जीवन का त्रिकाली विवेचन!

(5) शरीरांग लक्षणों से दशा अन्तर्दशा जानना व उनका फलादेश!

(6) शरीर लक्षण से जन्मकुण्डली की सत्यता की परीक्षा!

(7) सब कुछ भारतीय **विदेशी मत की मिलावट से रहित! ऋषियों का अपूर्व वचनामृत!**

भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर!

मूल्य 150 रुपये

॥ सामुद्रविद् वदति यातमनागतं च॥